अल-रिसाला

मई-जून 2023

अल-रिसाला
मई-जून 2023

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

रोज़ा और ईद	4
मुक़दमा	5
इंसान की शख़्सियत	7
शख़्सियत की तामीर	8
मोमिन का कंसर्न	9
ज़िंदगी की तामीर	11
सब्र की तालीम	12
सब्र	13
सब्र : ख़ुदा के लिए	15
सब्र : दीन का ख़ुलासा	16
क़ुरआनी तरीक़ा	18
हिकमत और सब्र	19
सब्र मंसूख़ नहीं	21
सब्र क्यों?	23
सब्र की अहमियत	25
हिकमत-ए-सब्र	26
बा-उसूल ज़िंदगी	27
सेल्फ़ डिसिप्लिन	30
एडजस्टमेंट का फ़ॉर्मूला	31
तवासी बिल-हक़, तवासी बिस-सब्र	32
डिसिप्लिन की अहमियत	35
रात और दिन	36

सब्र, मुहासबा, तवस्सुम 38
एराज़ 39
एराज़ की हिकमत 40
मुस्बत तजुर्बा 41
मनफ़ी सोच का मिज़ाज 43
अपनी तामीर आप 44
इंसान की रिआयत 47
मुस्बत सोच 50
मुस्बत सोच की ज़रूरत 51
मनफ़ी सोच का नुक़सान 52
नफ़रत का बम 53
रिएक्शन का तरीक़ा 55
सही तर्ज़-ए-फ़िक्र 56
तारीख़ से सबक़ 57
तजुर्बे से सबक़ सीखिए 58
एक लफ़्ज़ का फ़र्क़ 60
मुस्बत असर 61
अपनी सोच दुरुस्त कीजिए 63
एक वाक़या 64
स्मार्ट स्पीकर 65

रोज़ा और ईद

रोज़ा क्या है? रोज़ा हमारी दुनिया की ज़िंदगी की अलामत है और ईद हमारी आख़िरत की ज़िंदगी की अलामत। रोज़ा गोया इम्तिहान है और ईद उसका अंजाम। रोज़ा मशक़्क़त और मेहनत का दौर है, जबकि ईद आराम और ख़ुशी का दौर। रोज़ा दुनिया की महदूदियत की याद-दहानी है और ईद ला-महदूद ज़िंदगी (जन्नत) की निशानी।

रोज़े में सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक की सारी ज़िंदगी तरह-तरह की पाबंदियों में गुज़रती है— यह करो और वह न करो, इस वक़्त खाओ और इस वक़्त न खाओ, कब सोओ और कब बिस्तर से उठ जाओ। ग़रज़ पूरा एक महीना इस तरह गुज़ारा जाता है गोया कि आदमी की पूरी ज़िंदगी दूसरे के क़ब्ज़े में है। आदमी को अपनी मर्ज़ी पर नहीं, बल्कि दूसरे की मर्ज़ी पर चलना है। इस तरह रोज़ा आदमी को यह सबक़ देता है कि वह दुनिया में इस तरह रहे कि वह अपने आपको पूरी तरह ख़ुदा की निगरानी में दिए हुए हो, वह हर मामले में ख़ुदा के हुक्मों की पाबंदी कर रहा हो। इस तरह कि एक पुर-मशक़्क़त महीने के बाद ईद का दिन आता है। ईद के दिन अचानक तमाम अहकाम बदल जाते हैं। पहले रोज़ा रखना फ़र्ज़ था, ईद के दिन रोज़ा रखना हराम है। पहले लाज़िमी ज़रूरतों तक पर पाबंदी लगी हुई थी, अब कह दिया गया कि आज़ादी से घूमो-फिरो और ख़ुशियाँ मनाओ, हत्ता कि ग़रीबों के लिए साहिब-ए-हैसियत लोगों पर सदक़ा-फ़ितर मुक़र्रर किया गया, ताकि वे भी आज के दिन की ख़ुशियों से महरूम न रहें। यह गोया आख़िरत की ज़िंदगी की एक तस्वीर है। यह उस दिन को याद दिलाना है, जबकि ख़ुदा के सच्चे बंदों पर से हर क़िस्म की पाबंदियाँ उठा ली जाएँगी। वे अबदी आराम और अबदी ख़ुशी की जन्नतों में दाख़िल कर दिए

जाएँगे, ख़्वाह आज वे आम लोगों को कमज़ोर और बे-क़ीमत क्यों न नज़र आते हों।

हक़ीक़त यह है कि रोज़ा और ईद हमारी ज़िंदगी के दो मरहलों की याद दिलाने के लिए हैं। रोज़ा हमें याद दिलाता है कि दुनिया के मरहले में हमें किस तरह रहना है और ईद हमें बताती है कि आख़िरत के आने वाले मरहले में हमारी ज़िंदगी कैसी ज़िंदगी होगी। एक दुनिया की ज़िंदगी की इब्तिदाई अलामत है और दूसरी आख़िरत की ज़िंदगी की इब्तिदाई अलामत।

मुक़दमा

रॉबर्ट ग्रीन (Robert Greene) एक अमेरिकन राइटर हैं। इनकी पैदाइश 1959 में हुई। वे दुनिया की पाँच बेस्ट सेलिंग (best-selling) किताबों के मुसन्निफ़ हैं। एक मुख़्तसर वीडियो में इन्होंने अपनी किताब 'The Laws of Human Nature' का तआरुफ़ कराते हुए आला शख़्सियत की पहचान यह बताई है—

I want you to focus not on people's charming exterior, on their funny words, on their wit, on their charisma. Instead, focus on that deep inner quality, that core, character, because that's who they really are. Your character is creating what happens to you in life. There's the famous quote of the ancient philosopher Heraclitus: ''Character is Fate''.

लोगों की ज़ाहिरी कशिश, उनकी लतीफ़ा-गोई, उनकी हाज़िर-जवाबी, उनके करिश्माती अंदाज़ पर आप तवज्जोह न दें। इसके

बजाय आप यह देखें कि वह इंसान अंदरूनी ख़ूबी और अख़्लाक़ी किरदार के एतिबार से कैसा है, क्योंकि यही एक इंसान के अच्छे या बुरे होने की हक़ीक़ी और असल बुनियाद है। आप जो कुछ अच्छा या बुरा अमल कर रहे हैं, यह आपके किरदार का नतीजा है। इस मामले में क़दीम यूनानी फ़लसफ़ी हेराक्लीटस का एक क़ौल काफ़ी मशहूर है— "कैरेक्टर क़िस्मत है।" नतीजे के एतिबार से आपका अंजाम क्या होगा, इसका दार-ओ-मदार आपके ज़ाती किरदार पर है। हक़ीक़ी इंसान वह नहीं है, जो ज़ाहिर में अच्छा हो, मगर बातिन में बुरा। हक़ीक़ी इंसान वह है, जिसका बातिन उसके ज़ाहिर से बेहतर हो। वह डबल स्टैंडर्ड का हामिल इंसान न हो, क्योंकि डबल स्टैंडर्ड ही का मज़हबी नाम मुनाफ़क़त है। इस दुनिया में मुनाफ़क़त से बुरी कोई और चीज़ नहीं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत उमर को यह दुआ सिखाई थी—

اللَّهُمَّ اجْعَلْ سَرِيرَتِي خَيْرًا مِنْ عَلَانِيَتِي،
وَاجْعَلْ عَلَانِيَتِي صَالِحَةً.

"ऐ अल्लाह, मेरे बातिन को मेरे ज़ाहिर से बेहतर कर दे और मेरे ज़ाहिर को भी अच्छा बना।"

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 3,586)

ज़ेर-ए-नज़र किताब (तामीर-ए-शख़्सियत), जैसा कि नाम से वाज़ेह है, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के उन मज़ामीन का मजमूआ है, जिसमें इंसानी शख़्सियत की तामीर के रहनुमा उसूल बताए गए हैं।

(11 मार्च, 2023; डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम, नई दिल्ली)

इंसान की शख़्सियत

इंसान फ़ितरत का एक आला अतिया है। इंसान के अंदर हर क़िस्म की आला सलाहियत फ़ितरी तौर पर मौजूद होती है, लेकिन इंसान के अंदर जो सलाहियत है, वह पोटेंशियल (potential) के रूप में है। इस पोटेंशियल को एक्चुअल (actual) बनाना इंसान का अपना काम है। इंसान की इस पैदाइशी नौइय्यत को समझने के लिए क़ुरआन की इन दो आयतों का मुताला कीजिए—

أَلَمْ تَرَ كَيْفَ ضَرَبَ اللَّهُ مَثَلًا كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ أَصْلُهَا ثَابِتٌ وَفَرْعُهَا فِي السَّمَاءِ تُؤْتِي أُكُلَهَا كُلَّ حِينٍ بِإِذْنِ رَبِّهَا وَيَضْرِبُ اللَّهُ الْأَمْثَالَ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُونَ.

“क्या तुमने नहीं देखा कि किस तरह मिसाल बयान फ़रमाई अल्लाह ने कलमा-ए-तय्यबा की? वह एक पाकीज़ा दरख़्त की मानिंद है, जिसकी जड़ ज़मीन में जमी हुई है और जिसकी शाख़ें आसमान तक पहुँची हुई हैं। वह हर वक़्त अपना फल देता है, अपने रब के हुक्म से और अल्लाह लोगों के लिए मिसाल बयान करता है, ताकि वे नसीहत हासिल करें।” (14:24-25)

क़ुरआन की यह आयत तमसील की ज़बान में बता रही है कि इंसानी शख़्सियत की तामीर का उसूल क्या है। इस आयत में शजरा-ए-तय्यबा से मुराद सेहतमंद पौधा (healthy plant) है। सेहतमंद पौधे को जब ज़मीन में नसब कर दिया जाए, तो वह फ़ौरन ज़मीन और फ़िज़ा से अपनी ग़िज़ा लेना शुरू कर देता है। यह सिलसिला जारी रहता है, यहाँ तक कि वह एक पूरा दरख़्त बन जाता है। यही मामला एक इंसानी वुजूद का है। इंसान जब पैदा होता है, वह एक बिल-क़ुव्वत इंसान की

मानिंद होता है। फिर वह अपने माहौल से हर क़िस्म की ग़िज़ा लेना शुरू करता है, यहाँ तक कि वह बढ़ते-बढ़ते एक पूरा इंसान बन जाता है। उसके अंदर वे तमाम अमली और अख़्लाक़ी सिफ़ात पैदा हो जाती हैं, जो उसे इस ज़मीन पर एक सेहतमंद ज़िंदगी गुज़ारने के लिए दरकार हैं। इंसान को चाहिए कि वह ज़मीन पर मौजूद तमाम इमकानात को अपने लिए इस्तेमाल करे और अपने आपको अल्लाह का मतलूब इंसान बनाए। वह यह है कि अमली ज़िंदगी में हर मौक़े पर वह मतलूब रिस्पांस (required response) दे, जिसके लिए उसके ख़ालिक़ ने उसे मौजूदा दुनिया में भेजा है।

शख़्सियत की तामीर

ख़ुदा इंसान का ख़ालिक़ है। ज़ेहनी और जिस्मानी एतिबार से इंसान जो कुछ है, वह तमाम-तर ख़ुदाई तख़्लीक़ का नतीजा है, लेकिन मौजूदा दुनिया में इंसान की जो शख़्सियत बनती है, वह इंसान की ख़ुद अपनी तामीर का नतीजा होती है। इस एतिबार से यह कहना सही होगा कि इंसान 50 फ़ीसद ख़ुदा की तख़्लीक़ है और 50 फ़ीसद ख़ुद अपनी तामीर।

> “Every human being is fifty percent God-made, and fifty percent self-made.”

इंसान फ़ितरी तौर पर हर क़िस्म की सलाहियत लेकर पैदा होता है, लेकिन ये सलाहियतें उसके अंदर बिल-क़ुव्वा (potential) तौर पर होती हैं। इस बिल-क़ुव्वा को बिल-फ़ेल (actual) बनाना इंसान का अपना काम है। यह एक अज़ीम मौक़ा है, जो हर औरत और हर मर्द को मिला हुआ है। यह तमाम-तर इंसान का अपना काम है कि वह अपने

बिल-क़ुव्वा को बिल-फ़ेल बनाए या उसके बग़ैर ही एक नाकाम इंसान के तौर पर इस दुनिया से चला जाए।

बिल-क़ुव्वा को बिल-फ़ेल बनाना एक मुसलसल अमल है, जो पूरी ज़िंदगी जारी रहता है। इस अमल का आग़ाज़ संजीदा ग़ौर-ओ-फ़िक्र से होता है। संजीदा ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिये आदमी सच्चाई की दरयाफ़्त तक पहुँचता है। इसके बाद आदमी को हर दिन अपना मुहासबा (introspection) करना पड़ता है। उसे यह करना पड़ता है कि वह अपनी कमियों और कोताहियों को तलाश करे और उनकी इस्लाह करके अपने अंदर ज़ेहनी और रूहानी इर्तिक़ा के अमल को जारी रखे।

शख़्सियत की तामीर (personality building) का यह अमल आदमी ख़ुद करता है, लेकिन इस अमल को दुरुस्त तौर पर जारी रखने के लिए ज़रूरत होती है कि उसे मुसलसल तौर पर ख़ुदा की मदद हासिल रहे। इस मदद को हासिल करने का ज़रिया दुआ है। दुआ में जीने वाला आदमी ही अपनी शख़्सियत की तामीर में कामयाब होता है। दुआ के बग़ैर यह काम अपनी तकमील तक नहीं पहुँच सकता। इंसान जब पैदा होता है, तो वह 'ख़ाम लोहा' (iron ore) की मानिंद होता है। हर आदमी को यह करना है कि वह अपने ख़ाम लोहे को तरक़्क़ी देकर स्टील बनाए। यह काम हर एक को करना है। इसमें किसी भी औरत या मर्द का कोई इस्तिस्ना (exception) नहीं।

मोमिन का कंसर्न

एक मोमिन का सबसे बड़ा कंसर्न (concern) यह होता है कि आख़िरत में उसे जन्नत में दाख़िला मिले, वह अपनी अबदी ज़िंदगी में जन्नत का बाशिंदा बनकर रह सके। जन्नत में दाख़िला किसे मिलेगा, इस सवाल का जवाब क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में दिया गया है—

ذَٰلِكَ جَزَاءُ مَنْ تَزَكَّىٰ.

"जन्नत उसके लिए है, जो अपना तज़्किया करे।" (20:76)

तज़्किया कोई पुर-असरार चीज़ नहीं। तज़्किया के हुसूल का असल ज़रिया मुस्बत (positive) तर्ज़-ए-फ़िक्र है। मुस्बत तर्ज़-ए-फ़िक्र से आदमी के अंदर मुस्बत शख़्सियत बनती है और मुस्बत शख़्सियत आदमी को इस क़ाबिल बनाती है कि उसे फ़रिश्तों की सोहबत हासिल हो। इस तरह किसी आदमी के अंदर तज़्किये का प्रोसेस (process) शुरू होता है। वह फ़रिश्तों की सोहबत में तज़्किये का सफ़र करता रहता है, यही सफ़र उसके अंदर मुज़क्का शख़्सियत (purified soul) की तामीर करता है और यही वह मुज़क्का शख़्सियत है, जो किसी आदमी को जन्नत में दाख़िले का मुस्तहिक़ बनाती है। मौत से पहले जन्नती शख़्सियत की तैयारी है और मौत के बाद इस तैयार-शुदा शख़्सियत का जन्नत में दाख़िला।

नफ़रत और तशद्दुद का माहौल तज़्किये के अमल के लिए क़ातिल (killer) की हैसियत रखता है। नफ़रत और तशद्दुद के माहौल में शख़्सियत के तज़्किये के अमल का जारी होना मुमकिन नहीं। जिस आदमी के अंदर जन्नत की तलब हो, उसे पहला काम यह करना है कि वह अपने अंदर से नफ़रत को मिटाए, वह तशद्दुद को हर क़ीमत पर ख़त्म करे। जहाँ नफ़रत और तशद्दुद से पाक माहौल होगा, वहीं यह मुमकिन होगा कि तज़्किये का मुस्बत अमल जारी हो और उस मुस्बत शख़्सियत की तामीर हो, जो जन्नत में दाख़िले की मुस्तहिक़ क़रार पाए।

जन्नत ख़ुदा के पड़ोस का दूसरा नाम है। ख़ुदा के पड़ोस में ऐसा इंसान कभी नहीं बसाया जाएगा, जिसके अंदर नफ़रत और तशद्दुद का मिज़ाज पाया जाता हो। जो आदमी जन्नत का हरीस हो और जो आदमी ख़ुदा के पड़ोस में जीने की तमन्ना रखता हो, उसके लिए फ़र्ज़ के दर्जे में ज़रूरी है कि वह अपने अंदर से नफ़रत और तशद्दुद का

मुकम्मल ख़ात्मा करे। मौजूदा दुनिया में तशद्दुद जहन्नुम का नुमाइंदा है और अमन जन्नत का नुमाइंदा।

ज़िंदगी की तामीर

हर इंसान जो इस दुनिया में आता है, वह ख़ालिक़ की तरफ़ से कुछ ख़ास सलाहियत (unique quality) लेकर पैदा होता है। इसके साथ हर इंसान एक ग़ैर-मामूली दिमाग़ (mind) लेकर आता है। हर इंसान के लिए यह मुमकिन होता है कि वह अपने दिमाग़ को इस्तेमाल करके अपनी सलाहियत को दरयाफ़्त करे और दानिश-मंदाना प्लानिंग के तहत अपने पोटेंशियल (potential) को वाक़या (actual) बनाए। हर आदमी कामयाबी के साथ उसे अंजाम दे सकता है, ब-शर्ते कि वह हक़ीक़त-पसंदाना अंदाज़ में अपने ज़ेहन का इस्तेमाल करे।

इस मामले का दूसरा पहलू वह है, जिसे सपोर्टिंग सिस्टम कहा जा सकता है। फ़ितरत के मुताबिक़ यह होना चाहिए कि समाज का निज़ाम मुकम्मल तौर पर मेरिट की बुनियाद पर क़ायम किया जाए। मबनी-बर-मेरिट समाज (merit based society) के अंदर फ़ितरी तौर पर एक मुवाफ़िक़ अमल क़ायम हो जाता है, जिसे ऑटोमेटिक चैनलाइज़ेशन (automatic channelization) कहा जा सकता है। इस अमल (process) के दौरान अपने आप ऐसा होता है कि हर आदमी आख़िरकार अपनी उस इस्तिसनाई (exceptional) ख़ुसूसियत को दरयाफ़्त कर लेता है, जिसके लिए वह पैदा किया गया था।

असल यह है कि हर आदमी के अंदर इस बात का ताक़तवर मुहर्रिक (incentive) पाया जाता है कि वह अपने समाज में आला दर्जा हासिल करे। यह दाख़िली स्पिरिट अपना काम करती है। आदमी ने अगर ग़लत चॉइस ले ली है, तो वह उसे आमादा करती है कि वह

अपनी चॉइस को बदले और उस चॉइस को ले, जिसमें वह बेहतर (excel) करने की सलाहियत रखता है। इस दाख़िली स्पिरिट के साथ समाज के अंदर मबनी-बर-मेरिट (merit based) निज़ाम शामिल हो जाए, तो उसके बाद लाज़िमी तौर पर ऐसा होता है कि हर आदमी अपने उस ख़ुसूसी रोल को पा लेता है, जिसके लिए वह पैदा किया गया था। यही ज़िंदगी की तामीर का फ़ितरी तरीक़ा है। किसी ख़ुद-साख़्ता तरीक़े से इस मक़सद को हासिल नहीं किया जा सकता, ख़्वाह बज़ाहिर वह कितना ही ज़्यादा ख़ुशनुमा मालूम होता हो।

सब्र की तालीम

एक मग़रिबी राइटर विलियम पैटन (William Paton) ने लिखा है कि इस्लाम का एक फल इंसानियत के लिए यह रहा है कि उसने लोगों में शदीद और मुस्तक़िल सब्र पैदा किया। सब्र की यह कैफ़ियत उनमें अल्लाह की कामिल इताअत से पैदा हुई।

One of the fruits of Islam has been that stubborn, durable patience which comes of the submission to the absolute will of Allah.

यह तब्सिरा निहायत दुरुस्त है। इस्लाम में सब्र की बेहद अहमियत है। क़ुरआन की बेशतर आयतें, बराह-ए-रास्त या बिल-वास्ता (directly or indirectly) तौर पर सब्र ही से मुताल्लिक़ हैं। हक़ीक़त यह है कि सब्र की सिफ़त एक ऐसी सिफ़त है, जिसके बग़ैर ईमान व इस्लाम का तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता।

मौजूदा दुनिया इस ढंग पर बनी है कि यहाँ बार-बार आदमी को ना-ख़ुशगवार तजुर्बात से साबिक़ा पेश आता है— घर के अंदर भी

और घर के बाहर भी। अब अगर आदमी हर ऐसे मौक़े पर लोगों से उलझ जाए, तो वह इंसानी तरक़्क़ी की तरफ़ ज़्यादा आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए इस्लाम में सब्र की बहुत ज़्यादा ताकीद की गई है, ताकि आदमी ना-ख़ुशगवारियों को नज़र-अंदाज़ करते हुए मक़सदे-आला की तरफ़ अपने सफ़र को जारी रख सके।

क़ुरआन में बार-बार सब्र की ताकीद की गई है। मसलन फ़रमाया कि जो मुसीबतें तुम्हारे ऊपर पड़ें, उन पर सब्र करो (31:17)। सब्र करो, अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है (8:46)। फ़रमाया कि घाटे से महफ़ूज़ रहने वाले लोग वे हैं, जो एक-दूसरे को हक़ की नसीहत करें और एक-दूसरे को सब्र की नसीहत करें (103:3)।

इसी तरह हदीस में कसरत से सब्र की अहमियत बताई गई है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"सुनो और मानो और सब्र करो।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 10,008)

एक सहाबी कहते हैं— रसूल और असहाब-ए-रसूल मुशरिकीन और अहले-किताब से दरगुज़र करते थे, जैसा कि अल्लाह ने उनको हुक्म दिया था और उनकी ईज़ाओं पर हमेशा सब्र करते थे (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 4,566)। हक़ीक़त यह है कि सब्र इस्लामी अमल की बुनियाद है। फ़ित्नों और आज़माइशों की इस दुनिया में सब्र के बग़ैर कोई आदमी इस्लामी किरदार पर क़ायम नहीं रह सकता।

सब्र

सब्र का मतलब है— रुकना, अपने आपको थामना। इंसान का मक़सद यह है कि वह ऊँचे आदर्शों के मुताबिक़ दुनिया में ज़िंदगी गुज़ारे, मगर

दुनिया में क़दम-क़दम पर ऐसी ना-पसंदीदा बातें सामने आती हैं, जो आदमी को भड़का दें, जो आदमी के निशाने को असल मक़सद से हटाकर दूसरी तरफ़ कर दें।

ऐसी हालत में आदमी अगर ऐसा करे कि वह हर भड़काने वाली बात पर भड़क उठे, वह हर ना-मुवाफ़िक़ चीज़ से उलझ जाए, तो वह अपने मक़सद की तरफ़ अपना सफ़र जारी रखने में कामयाब नहीं होगा। वह ग़ैर-मुताल्लिक़ चीज़ों में उलझकर रह जाएगा। इस मसले का वाहिद हल सब्र है। सब्र का मतलब यह है कि आदमी को जब किसी कड़वे तजुर्बे से साबिक़ा पेश आए, तो वह भड़क उठने के बजाय बरदाश्त का तरीक़ा इख़्तियार करे। वह झटके को सहते हुए सच्चाई के रास्ते पर आगे बढ़ जाए।

यह सब्र एक तरफ़ बाहर की दुनिया में पेश आने वाले मसाइल का अमली हल है, तो दूसरी तरफ़ वह आदमी के लिए अपनी शख़्सियत की तामीर का ज़रिया है। सब्र न करने वाले की शख़्सियत मनफ़ी (negative) रुजहानात के दरमियान परवरिश पाती है और जो आदमी सब्र कर ले, उसकी शख़्सियत मुस्बत रुजहानात के दरमियान परवरिश पाने लगती है।

सब्र पसपाई नहीं है। सब्र का मतलब जोश वाले रास्ते को छोड़कर होश वाले रास्ता की तरफ़ इक़्दाम करना है। सब्र यह है कि आदमी नाज़ुक मौक़े पर अपने जज़्बात को थामे। वह अपनी अक़्ल को इस्तेमाल करके ज़्यादा मुफ़ीद सिम्त में अपने अमल का मैदान तलाश कर ले।

मौजूदा दुनिया इस ढंग पर बनी है कि यहाँ हर शख़्स को लाज़िमन ना-ख़ुशगवार बातों का सामना करना पड़ता है। ना-पसंदीदा हालात का सामना करना पड़ता है। उसे ना-गवार आवाज़ें सुननी पड़ती हैं। इस क़िस्म के मौक़े पर लोगों से उलझने का तरीक़ा इख़्तियार करने का नाम बेसब्री है और एराज़ का तरीक़ा इख़्तियार करने का नाम सब्र।

मौजूदा दुनिया में कामयाबी सिर्फ़ उन लोगों के लिए मुक़द्दर है, जो ना-ख़ुशगवार मौक़े पर सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करें।

सब्र : ख़ुदा के लिए

क़ुरआन में बार-बार सब्र की तलक़ीन की गई है। एक जगह पैग़ंबर को ख़िताब करते हुए इरशाद हुआ है—

وَاصْبِرْ وَمَا صَبْرُكَ إِلَّا بِاللَّهِ.

"तुम सब्र करो और तुम्हारा सब्र सिर्फ़ ख़ुदा के लिए है। तुम जो सब्र कर रहे हो, वह बज़ाहिर इंसान के मुक़ाबले में सब्र करना है, मगर अपनी हक़ीक़त के एतिबार से तुम्हारा सब्र सिर्फ़ अल्लाह के लिए है।" (16:127)

ख़ुदा के लिए सब्र करने का मतलब उस दीनी और दावती मक़सद के लिए सब्र करना है, जिसका हुक्म अल्लाह ने दिया है। जब भी हक़ की दावत उठती है, तो इसमें एक तरफ़ दाई होता है और दूसरी तरफ़ मदऊ। दावत के नतीजे में मदऊ की तरफ़ से मनफ़ी रद्दे-अमल (negative reaction) पेश आता है। इस बिना पर दाई और मदऊ के दरमियान तरह-तरह के मसाइल उभर आते हैं। ऐसे मौक़े पर दाई अगर जवाबी रद्दे-अमल का तरीक़ा इख़्तियार करे, तो दाई और मदऊ के दरमियान ताल्लुक़ात बिगड़ जाएँगे और दावती अमल को जारी रखने के लिए ज़रूरी नॉर्मल हालत क़ायम नहीं रहेगी।

ख़ुदा के लिए सब्र का मतलब यह है कि यकतरफ़ा बरदाश्त के ज़रिये यह कोशिश की जाए कि मोतदिल हालात क़ायम रहें, ताकि ख़ुदा की याद और ख़ुदा की इबादत का माहौल बरक़रार रहे, ताकि दावत का अमल बिना रोक-टोक जारी रहे, ताकि मदऊ के अंदर ज़िद

और नफ़रत की नफ़्सियात पैदा न हो सके, ताकि तालीम और तामीर का काम किसी रुकावट के बग़ैर जारी रहे।

सब्र फ़ितरत का एक क़ानून है। हर मंसूबाबंद तामीरी अमल के लिए सब्र ज़रूरी है। सब्र बुज़दिली नहीं, बल्कि सब्र ख़ुदाई तालीमात का मर्कज़ी उसूल है। ख़ुदा का एक सच्चा बंदा इसका तहम्मुल नहीं कर सकता कि वह सब्र की रविश को छोड़ दे, क्योंकि सब्र की रविश से हटने का नतीजा यह होता है कि उससे तवाज़ो की सिफ़त छिन जाती है। वह नफ़रत और इंतिक़ाम की नफ़्सियात में जीने लगता है। वह इंसानी मजमूए को अपने और ग़ैर में बाँट देता है। उसके अंदर से इंसानी हमदर्दी का वह जज़्बा निकल जाता है, जो दावती अमल के लिए ज़रूरी है। वह माहौल ख़त्म हो जाता है, जिसमें शुक्र-ए-ख़ुदावंदी के जज़्बात परवरिश पाएँ।

सब्र : दीन का ख़ुलासा

सब्र दीन का ख़ुलासा है। सब्र हर क़िस्म की नेकियों की बुनियाद है। सब्र दुनिया में कामयाबी का ज़ीना है और आख़िरत में वह जन्नत की कुंजी है। क़ुरआन में सब्र के बारे में एक ऐसी आयत है, जो किसी भी दूसरे अमल के बारे में नहीं। फ़रमाया कि बे-शक सब्र करने वालों को उनका अज्र बे-हिसाब दिया जाएगा। (39:10)

एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

وَمَا أُعْطِيَ أَحَدٌ عَطَاءً خَيْرًا وَأَوْسَعَ مِنَ الصَّبْرِ.

"सब्र से बेहतर और सब्र से बड़ा कोई अतिया इंसान को नहीं दिया गया।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,469)

इब्न हजर अल-असक़लानी ने इस हदीस की तशरीह करते हुए लिखा है—

الصَّبْرُ جَامع لمكارم الْأَخْلَاق.

"सब्र में सभी आला अख़्लाक़ियात शामिल हैं।"

(फ़तहुल बारी, इब्न-ए-हजर, जिल्द 1, सफ़्हा 305)

अहादीस व आसार में कसरत से सब्र की अहमियत बताई गई है। हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु का क़ौल है कि सब्र की हैसियत ईमान में वही है, जो हैसियत इंसानी जिस्म में सिर की है—

الصَّبْرُ مِنَ الْإِيمَانِ بِمَنْزِلَةِ الرَّأْسِ مِنَ الْجَسَدِ.

(किताब अल-ज़ुहद, वकी' बिन अल-जर्राह, हदीस नंबर 199)

इब्न जौज़ी ने लिखा है—

عَاقِبَةِ الصَّبْرِ الْجَمِيل جَمِيلَة.

"अच्छे सब्र का नतीजा अच्छा होता है"

(सैद अल-ख़ातिर, जिल्द 1, सफ़्हा 402)

अरबी ज़बान के आलिम इब्न मंज़ूर ने लिखा है—

أَصل الصَّبْر الحَبْس،والصَّبْرُ نقِيض الجَزَع.

"सब्र की असल रुकना है। सब्र बेचैन और बे-बरदाश्त होने का उल्टा है।" (लिसान अल-अरब, जिल्द 4, सफ़्हा 438)

राग़िब अल-अस्फ़हानी ने लिखा है—

الصبر الإمساك والصبر حبس النفس
على ما يقتضيه العقل والشرع.

"सब्र की हक़ीक़त इम्साक (कंट्रोल करना) है। सब्र यह है कि आदमी अक़्ल और शरीयत के तक़ाज़े के मुताबिक़ अपने आपको रोके।" (अल-मुफ़रदात फ़ी ग़रीब अल-क़ुरआन, सफ़्हा 474)

सब्र की इतनी ज़्यादा अहमियत क्यों है? इसकी वजह मौजूदा दुनिया की सूरतेहाल है। यह दुनिया दारुल इम्तिहान है। इसी इम्तिहान या आज़माइश की मस्लहत की बिना पर यहाँ हर शख़्स को पूरी आज़ादी दी गई है। यह इंसानी आज़ादी ख़ुद ख़ुदा के मंसूबे के तहत है, इसलिए कोई भी इसे बदलने पर क़ादिर नहीं।

क़ुरआनी तरीक़ा

मौजूदा दुनिया में आदमी इम्तिहान की हालत में है और जब वह इम्तिहान की हालत में है, तो उसे आज़ादी भी दी गई है। अब कुछ लोग आज़ादी का सही इस्तेमाल करते हैं और कुछ लोग आज़ादी का ग़लत इस्तेमाल करते हैं। आज़ादी के ग़लत इस्तेमाल ही का यह नतीजा है कि दुनिया में फ़साद होता है। बाहमी मुक़ाबले पेश आते हैं। एक-दूसरे के ख़िलाफ़ अदावतें जागती हैं। इज्तिमाई ज़िंदगी में तल्ख़ी और शिकायत के लम्हात पेश आते हैं। यह सब ऐन क़ानून-ए-क़ुदरत के तहत होता है और जो चीज़ ख़ुद क़ुदरत के मंसूबे के तहत पेश आए, उसे ख़त्म करना किसी के लिए मुमकिन नहीं।

अब इसका हल क्या है? क़ुरआन में वाज़ेह तौर पर इसका हल बताया गया है और वह यह कि लोग रद्दे-अमल का तरीक़ा न इख़्तियार करें, बल्कि अपने आपको सँभालते हुए हिकमत और तदबीर के साथ मामला करें—

"जहालत के मुक़ाबले में एराज़ करना।" (7:199)

"अमल-ए-सू के मुक़ाबले में अमल-ए-हसना।" (41:34)

"तकलीफ़ के वक़्त सब्र।" (14:12)

"इश्तिआल के मुक़ाबले में पुर-सुकून रहना।" (48:26)

क़ुरआन की इन हिदायात से मालूम होता है कि जब इंसान अपनी आज़ादी का ग़लत इस्तेमाल करके दूसरे शख़्स को अज़ियत पहुँचाए, तो दूसरे शख़्स को जवाबी तरीक़ा नहीं इख़्तियार करना है, बल्कि बरदाश्त का तरीक़ा इख़्तियार करना है। उसे इश्तिआल-अंगेज़ी के बावजूद मुश्तइल नहीं होना है। उसे नफ़रत के जवाब में मुहब्बत का तोहफ़ा पेश करना है। अगर वह ऐसा करे, तो क़ुदरत का क़ानून हरकत में आ जाएगा और वह ज़्यादा बेहतर तौर पर उसके मसले को हल कर देगा।

सब्र और एराज़ इंसान का मामला नहीं, बल्कि वह हक़ीक़तन ख़ुदा का मामला है। यह ख़ुद ख़ुदा की मर्ज़ी है कि लोग सब्र करें, क्योंकि उसके बग़ैर ख़ुदा का मंसूबा-ए-इम्तिहान मुकम्मल नहीं हो सकता। यही वजह है कि इसका सवाब बहुत है, बल्कि इसका सवाब तमाम दूसरे आमाल से ज़्यादा है। क़ुरआन में ख़ुसूसी तौर पर वादा किया गया है कि जो लोग अल्लाह के लिए सब्र करें, उन्हें उनका अज्र बे-हिसाब मिक़दार में दिया जाएगा।

हिकमत और सब्र

मौजूदा दुनिया में कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचने के लिए हिकमत और सब्र लाज़िमी तौर पर ज़रूरी हैं। हिकमत और सब्र के बग़ैर न दीन का कोई मक़सद हासिल किया जा सकता और न दुनिया का।

हिकमत की जड़ यह है कि आदमी एक चीज़ और दूसरी चीज़ के फ़र्क़ को जाने। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मक्का में हर क़िस्म के ज़ुल्म के बावजूद ज़ालिमों से नहीं लड़े, मगर मदीने में हस्ब-ए-ज़रूरत आपने ज़ालिमों का मुक़ाबला किया। 'ग़ज़वा-ए-हमरा

अल-असद' का सफ़र ब-आवाज़-ए-बुलंद किया गया, मगर फ़त्ह-ए-मक्का के सफ़र में आपने बुलंद आवाज़ी से मना फ़रमा दिया। सुलह-ए-हुदैबिया के वक़्त आपने मक्कावालों की यकतरफ़ा शराइत पर सुलह कर ली, मगर बनू-बक्र और बनू-ख़ुज़ाआ का वाक़या पेश आने के बाद आपने मक्का के सरदार अबू सुफ़ियान की तज्दीद सुलह की पेशकश को क़ुबूल नहीं फ़रमाया वग़ैरह।

हक़ीक़त यह है कि इस दुनिया में कभी बोलना ज़रूरी होता है और कभी यह ज़रूरी होता है कि आदमी अपने मुँह में ज़बान रखते हुए चुप हो जाए। कभी हालात इक़्दाम करने का तक़ाज़ा करते हैं और कभी इक़्दाम न करने का। कभी आगे बढ़ना अफ़ज़ल होता है और कभी यह अफ़ज़ल होता है कि आदमी पीछे की सीट पर बैठने के लिए अपने आपको राज़ी कर ले। इसी फ़र्क़ को जानने का नाम हिकमत है।

सब्र की हक़ीक़त यह है कि आदमी रद्दे-अमल से रुके और ग़ैर-मुतास्सिर ज़ेहन के तहत सोच-समझकर अपने अमल की मंसूबाबंदी करे। आप सड़क पर अपनी गाड़ी दौड़ा रहे हैं और सामने अचानक दूसरी गाड़ी आ गई। अब गाड़ी को रोककर अपने लिए रास्ता निकालने का नाम सब्र है और रोके बग़ैर गाड़ी दौड़ाने का नाम बेसब्री।

सब्र का तरीक़ा मौजूदा दुनिया में कोई हक़ीक़ी कामयाबी हासिल करने के लिए इंतिहाई हद तक ज़रूरी है। जो ड्राइवर बेसब्री के साथ सड़क पर गाड़ी चलाए, वह ख़ुद को भी नुक़सान पहुँचाएगा और अपनी गाड़ी को भी तबाह करेगा। इसी तरह जो लोग सब्र की शर्त को पूरा किए बग़ैर ज़िंदगी में कामयाब होना चाहे, वे सिर्फ़ बरबादी की तारीख़ बनाएँगे, तरक़्क़ी और कामयाबी की तारीख़ बनाना उनके लिए मुक़द्दर नहीं।

सब्र मंसूख़ नहीं

एक फ़िलिस्तीनी नौजवान से मुलाक़ात हुई। गुफ़्तुगू के दौरान मैंने दीन में सब्र की अहमियत का ज़िक्र किया और सब्र से मुताल्लिक़ क़ुरआन की आयतें उनके सामने पेश कीं। उन्होंने फ़ौरन कहा— "सब्र की आयतें तो मक्की दौर में उतरी थीं। हिजरत के बाद सब्र का हुक्म मंसूख़ कर दिया गया और जिहाद-ओ-क़िताल की आयतें उतारी गईं। अब हम दौर-ए-सब्र में नहीं हैं, अब हम दौर-ए-जिहाद में हैं। अब हमारे तमाम मामलात जिहाद के ज़रिये दुरुस्त होंगे और यही काम हमें करना है।"

यह एक बहुत बड़ा मुग़ालता है, जिसमें बेशुमार लोग मुब्तला हैं। हक़ीक़त यह है कि सब्र एक अबदी हुक्म है। इसका ताल्लुक़ हर दौर और हर ज़माने से है। सब्र तमाम दीनी आमाल का ख़ुलासा है। आदमी कोई दीनी अमल सही तौर पर उसी वक़्त कर सकता है, जबकि उसके अंदर सब्र का माद्दा हो। जिस आदमी से सब्र रुख़्सत हो जाए, वह कोई भी दीनी काम सही ढंग से अंजाम नहीं दे सकता, ख़्वाह वह कलमा-ए-तौहीद पर इस्तिक़ामत का मामला हो या मैदान-ए-मुक़ाबला में शुजाअत का मामला या और कोई मामला।

यही वजह है कि क़ुरआन और हदीस में बार-बार सब्र की ताकीद की गई है और अलल-इतलाक़ (absolute) तौर पर इसकी अहमियत पर ज़ोर दिया गया है। क़ुरआन में सब्र का माद्दा एक सौ से ज़्यादा बार इस्तेमाल किया गया है। सूरह अल-बक़रा एक मदनी सूरत है। इसमें कहा गया है कि तुम लोग सब्र और नमाज़ से मदद लो, अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है—

اسْتَعِينُوا بِالصَّبْرِ وَالصَّلَاةِ إِنَّ اللَّهَ مَعَ الصَّابِرِينَ. (2:153)

हदीस में सब्र की बहुत ज़्यादा फ़ज़ीलत आई है और मुख़्तलिफ़ पहलुओं से इसकी अहमियत बताई गई है। एक रिवायत के मुताबिक़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह ने सब्र से ज़्यादा अच्छा और बड़ा अतिया किसी शख़्स को नहीं दिया—

وَمَا أُعْطِيَ أَحَدٌ مِنْ عَطَاءٍ أَوْسَعَ مِنَ الصَّبْرِ.

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 1,644)

सब्र के लुग़वी मआनी रुकने के हैं। इमाम राग़िब ने सब्र की हक़ीक़त इन लफ़्ज़ों में बयान की है—

الصَّبْرُ حَبْسُ النَّفْسِ عَلَى مَا يَقْتَضِيهِ الْعَقْلُ.

"सब्र उस चीज़ से नफ़्स को रोकने का नाम है, जिसका अक़्ल तक़ाज़ा करे।" (अल-मुफ़रदात फ़ी ग़रीब अल-क़ुरआन, सफ़्हा 474)

अरबी में कहा जाता है—

صَبَرْتُ نَفْسِي عَلَى ذَلِكَ الْأَمْرِ، أَيْ حَبَسْتُهَا.

"मैंने अपने नफ़्स को फ़ुलाँ चीज़ से रोक दिया।"
(मोजम मक़ायीस अल-लुगह, इब्न अल-फ़ारिस, जिल्द 3, सफ़्हा 329)

मौजूदा दुनिया एक ऐसी दुनिया है, जहाँ मुवाफ़िक़ पहलुओं के साथ ना-मुवाफ़िक़ पहलू भी मौजूद हैं। यही वजह है कि यहाँ किसी काम को कामयाबी के साथ अंजाम देने के लिए सब्र लाज़िमी तौर पर ज़रूरी है। यहाँ अपनी ख़्वाहिश को दबाकर अपनी अक़्ल को रहनुमा बनाना पड़ता है। यहाँ एक चीज़ को लेने के लिए दूसरी चीज़ को छोड़ना पड़ता है। यहाँ आज पर तवज्जोह देने के लिए कल को मुस्तक़बिल के ख़ाने में डालना पड़ता है। यहाँ ख़िलाफ़-ए-मिज़ाज बातों को बरदाश्त करते हुए अपना सफ़र जारी रखना पड़ता है। यहाँ रद्दे-अमल की नफ़्सियात से आज़ाद रहकर मुस्बत सोच के तहत अपना मंसूबा बनाना पड़ता है।

इन तमाम चीज़ों का ताल्लुक़ सब्र से है। यही वजह है कि इस दुनिया में सब्र के बग़ैर कभी कोई कामयाबी हासिल नहीं होती।

दुनियावी कामों की तरह दीनी काम के लिए भी सब्र लाज़िमी तौर पर ज़रूरी है। जिस ज़मीन पर और जिस इंसानी माहौल में एक दुनियादार काम करता है, उसी ज़मीन पर और उसी इंसानी माहौल में दीनदार भी अपना अमल करता है। इसलिए यहाँ दीनी मक़सद को पाने के लिए भी सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करना ज़रूरी है। सब्र के बग़ैर कोई भी दीनी काम नतीजाख़ेज़ तौर पर अंजाम नहीं दिया जा सकता।

इस्लाम की तारीख़ वसीअ तक़सीम के मुताबिक़, तीन क़िस्म के हालात से गुज़री है— दावत, ख़िलाफ़त और मुलूकियत। दावती दौर की मेयारी मिसाल रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का 23 साला ज़माना है। यही वह ज़माना है, जिसके मुताले से दावत के आदाब और इसके तरीक़े सही तौर पर मालूम किए जा सकते हैं। इसके बाद ख़िलाफ़त का ज़माना आता है, जो गोया सही मआनी में नाइबीन-ए-रसूल का ज़माना है। यह ज़माना हज़रत अबू बक्र इब्न अबू क़ुहाफ़ा से शुरू होता है और हज़रत अली इब्न अबी तालिब पर ख़त्म होता है। इसके बाद मुअर्रिख़ीन-ए-इस्लाम के मुताबिक़, मुलूकियत का दौर है। यह ज़माना हज़रत अमीर मुआविया से शुरू हुआ और आज तक किसी-न-किसी शक्ल में जारी है। इन तीनों दौर में जो इस्लामी किरदार मतलूब है, उस पर क़ायम होने के लिए यकसाँ तौर पर सब्र की अहमियत है।

सब्र क्यों?

क़ुरआन-ओ-हदीस में सब्र पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है, यहाँ तक कि क़ुरआन में सब्र को सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-इनाम अमल

बताया गया है (10:39)। सब्र क्या है? सब्र यह है कि आदमी इज्तिमाई ज़िंदगी में रद्दे-अमल (reaction) से बचे और हर हाल में मुस्बत रवैये (positive behaviour) पर क़ायम रहे। इज्तिमाई ज़िंदगी में उसका रिस्पांस हमेशा मुस्बत रिस्पांस हो, न कि जवाबी अंदाज़ का रिस्पांस।

सब्र की इतनी ज़्यादा अहमियत क्यों है? इसका सबब यह है कि इंसानी समाज में सब्र वाहिद क़ाबिल-ए-अमल फ़ॉर्मूला (only workable formula) है यानी इंसान के ख़ालिक़ ने उसे कामिल आज़ादी के साथ पैदा किया है। इंसान आज़ाद है कि वह अपनी आज़ादी को दुरुस्त तौर पर इस्तेमाल करे या ग़लत तौर पर। वह अपने अमल की प्लानिंग दूसरों के साथ रिआयत करते हुए करे या दूसरों की रिआयत किए बग़ैर। ऐसी हालत में इज्तिमाई ज़िंदगी में ज़रूरी है कि आप दूसरों के साथ एडजस्ट करते हुए अपने अमल का मंसूबा बनाएँ। ऐसा ही मंसूबा इस दुनिया में क़ाबिल-ए-अमल मंसूबा है। इसके बरअक्स जिस मंसूबे में दूसरों की रिआयत शामिल न हो, वह कभी इस दुनिया में तकमील तक पहुँचने वाला नहीं।

सब्र बज़ाहिर दूसरों के लिए इख़्तियार किया जाता है, लेकिन इसका फ़ायदा ख़ुद सब्र करने वाले को मिलता है। इस एतिबार से देखिए तो सब्र वाहिद नतीजाख़ेज़ अमल है। इसके बरअक्स बेसब्री मुस्बत नतीजा पैदा करने वाला अमल नहीं। सब्र को दूसरे अल्फ़ाज़ में नतीजाख़ेज़ मंसूबाबंदी कहा जा सकता है। सब्र किसी के लिए दानिश-मंदाना अमल की हैसियत रखता है। इसके बरअक्स बेसब्री एक बे-दानिशी का अमल है। हैवान के लिए बेसब्री का जवाज़ हो सकता है, क्योंकि हैवान के पास अक़्ल नहीं, मगर इंसान के लिए बेसब्री का कोई जवाज़ नहीं, क्योंकि इंसान को अक़्ल दी गई है, जिसके ज़रिये वह सब्र की अहमियत को पेशगी तौर पर समझ सकता है।

सब्र की अहमियत

क़ुरआन-ओ-हदीस में सब्र की बहुत ज़्यादा अहमियत बताई गई है, यहाँ तक कि क़ुरआन की एक आयत में बताया गया है कि सब्र करने वालों को बे-हिसाब अज्र दिया जाएगा—

إِنَّمَا يُوَفَّى الصَّابِرُونَ أَجْرَهُمْ بِغَيْرِ حِسَابٍ. (39:10)

सब्र की यह अहमियत क्यों है? सब्र का सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि सब्र आदमी को हक़ीक़त-पसंद बनाने वाला है। सब्र आदमी को मनफ़ी सोच से बचाता है और मुस्बत सोच वाला इंसान बनाता है। मुस्बत सोच वाला आदमी हमेशा कामयाब होता है और मनफ़ी सोच वाला आदमी हमेशा ना-कामयाब, क्योंकि मनफ़ी सोच वाला आदमी क़ुदरत के क़ानून की पैरवी नहीं करता। इसके बरअक्स मुस्बत सोच वाला इंसान हमेशा फ़ितरत के क़ानून की पैरवी करके हमेशा अपने मक़सद को हासिल करने की कोशिश करता है।

जिस आदमी के अंदर बेसब्री का माद्दा है, वह अपने जज़्बात पर कंट्रोल नहीं करेगा। उसका मिज़ाज यह होगा कि जब वह चाहे, उसी वक़्त उसकी मतलूब चीज़ मिल जाए। इसके बरअक्स सब्र वाला आदमी अपने आपको दूसरे तक़ाज़ों के मुताबिक़ बनाने की कोशिश करेगा। वह चाहेगा कि उस वक़्त तक इंतज़ार करे, जबकि उसूल के मुताबिक़ उसका मुक़र्रर वक़्त आ जाए। वह जानेगा कि वह अपनी बनाई हुई दुनिया में नहीं है। उसका बनाने वाला अल्लाह रब्बुल आलमीन है। इस तरह वह अपनी ख़्वाहिश को कंट्रोल करेगा और वह अल्लाह के मुक़र्रर क़ानून की पैरवी करेगा, क्योंकि वह जानेगा कि अल्लाह के मुक़र्रर क़ानून की तामील किए बग़ैर पूरा काम बनने वाला नहीं।

सब्र का उसूल एक इंसान को इससे बचाता है कि उसका ज़ेहन मुख़ालिफ़ के बारे में मनफ़ी हो जाए। पुर-अमन तरीक़ेकार (peaceful activism) मुस्बत ज़ेहन का इज़हार है। ग़ैर-मोतदिल या मनफ़ी ज़ेहन कभी पुर-अमन तरीक़ेकार को कामयाबी के साथ जारी नहीं रख सकता। सब्र का उसूल दरअसल इसी एतिदाल या मुस्बत मिज़ाज की बरक़रारी की एक यक़ीनी गारंटी है। जो लोग ना-मुवाफ़िक़ हालात सामने आने के बावजूद न बुदकें और क़ानून-ए-फ़ितरत के साथ अपने आपको बाँधे रहें, वही वे लोग हैं, जो सुन्नत-ए-इलाही के मुताबिक़ कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचेंगे।

हिकमत-ए-सब्र

ईमानी ज़िंदगी बा-उसूल ज़िंदगी का नाम है। मोमिन इंसान एक बा-मक़सद इंसान होता है। ऐसा आदमी जज़्बाती रद्दे-अमल के तहत कोई इक़्दाम नहीं कर सकता। उसके सामने जब कोई सूरतेहाल आएगी तो वह रुककर सोचेगा कि इस मामले में कौन-सा रद्दे-अमल मेरे उसूल और मक़सद के मुताबिक़ है और कौन-सा रद्दे-अमल मेरे उसूल और मक़सद के ख़िलाफ़ है। दूसरे लफ़्ज़ों में, यह कह सकते हैं कि पेश-आम्दा मामलात में आजिलाना जवाब (hasty response) का नाम बेसब्री है और सोचे-समझे जवाब (considered response) का नाम सब्र।

इस सब्र का ताल्लुक़ ज़िंदगी के तमाम मामलात से है। आप पर एक ख़्वाहिश का ग़लबा होता है, मगर आप ऐसा नहीं करते कि ख़्वाहिश पैदा होते ही उसे कर गुज़रें, बल्कि आप अपने आपको थामकर सोचते हैं और वही करते हैं, जो शरीयत-ए-ख़ुदावंदी का तक़ाज़ा है, तो यह सब्र है। किसी शख़्स से आपको तकलीफ़ पहुँचती है और आपके अंदर

इंतक़ाम का जज़्बा भड़क उठता है, मगर आप अपने आपको रोकते हैं और फिर वह करते हैं, जो ईमान का तक़ाज़ा है, तो यह सब्र है। आप इस्लामी दावत लेकर उठते हैं, आपके रास्ते में रुकावटें पेश आती हैं, अब आप अंधाधुंध इक़्दाम नहीं करते, बल्कि सारे पहलुओं को शरीयत की रोशनी में जाँचते हैं और इसके बाद वही करते हैं, जो शरीयत के मुताबिक़ करना चाहिए, तो यह सब्र है। आप ऐसे हालात में घर जाते हैं, जो आपकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हैं। अब आप फ़ौरी जज़्बे के तहत उठकर हालात से लड़ने नहीं लगते, बल्कि क़ुरआन और सुन्नत की रोशनी में पूरे मामले को जाँचते हैं और इसके बाद वह करते हैं, जो क़ुरआन और सुन्नत की मंशा है, न कि वह, जो आपकी ज़ाती मंशा है, तो इसका नाम सब्र है। सब्र मोमिन का दस्तूर है, सब्र मोमिन का उसूल-ए-हयात है। सब्र वह हकीमाना तरीक़-ए-अमल है, जो मोमिन इस दुनिया में इख़्तियार करता है। जिस आदमी के अंदर सब्र की सिफ़त न हो, उसके मुताल्लिक़ यह मामला मुशतबा (doubtful) है कि उसे ईमान की मारिफ़त मिली है या अभी तक उस का ईमान मारिफ़त से ख़ाली है।

बा-उसूल ज़िंदगी

दुनिया का निज़ाम इस तरह बना है कि यहाँ हमेशा एक को दूसरे से इख़्तिलाफ़ पेश आता है। यह इख़्तिलाफ़ मबनी बर-फ़ितरत है। इसलिए इसे कभी ख़त्म नहीं किया जा सकता। ऐसी हालत में कामयाब ज़िंदगी का उसूल सिर्फ़ एक है और वह यह है कि लोगों के साथ एडजस्ट (adjust) करके ज़िंदगी गुज़ारी जाए। इख़्तिलाफ़ को नज़र-अंदाज करके आपसी फ़ायदे की बुनियाद पर ज़िंदगी का निज़ाम क़ायम किया जाए। इस दुनिया में इसके सिवा कोई चुनाव किसी के लिए मुमकिन नहीं।

इस मामले में मुसलमानों का मामला दूसरों से अलग नहीं है। अलबत्ता मुसलमान को इस मामले में एक इम्तियाज़ी ख़ुसूसियत हासिल है। दूसरों के लिए एडजस्टमेंट सिर्फ़ मफ़ाद का एक मामला है, मगर मुसलमान के लिए यह मामला एक आला इबादत का मामला बन जाता है।

इस फ़र्क़ का सबब यह है कि मुसलमान का एडजस्टमेंट एक उसूल के तहत होता है, जबकि दूसरों का एडजस्टमेंट सिर्फ़ दुनियावी मफ़ाद के तहत पेश आता है। मुसलमान अपनी हैसियत के एतिबार से एक ख़ुदाई मिशन के हामिल हैं यानी ख़ुदा के अबदी पैग़ाम को दूसरे तमाम इंसानों तक पहुँचाना। पैग़ाम-रसानी का यह काम सिर्फ़ उस वक़्त दुरुस्त तौर पर अंजाम पा सकता है, जबकि मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों के दरमियान ख़ुशगवार ताल्लुक़ात क़ायम हों। मुसलमान जब दूसरी क़ौमों के साथ एडजस्टमेंट का मामला करता है, तो इसका मुहर्रिक (incentive) उसका यही दावती ज़ेहन होता है। वह ज़ाती मफ़ाद के लिए एडजस्टमेंट नहीं करता, बल्कि वह सिर्फ़ इसलिए एडजस्टमेंट करता है, ताकि उसका दावती मिशन किसी रुकावट के बग़ैर पुर-अमन अंदाज़ में जारी रहे। मुहर्रिक का यह फ़र्क़ बहुत अहम है। इसी फ़र्क़ की बिना पर ऐसा होता है कि मुसलमान का एडजस्टमेंट एक ऐसा इबादती अमल बन जाता है, जो उसे आख़िरत में अज्र-ए-अज़ीम का मुस्तहिक़ बना दे। इसके बरअक्स दूसरों का एडजस्टमेंट सिर्फ़ ज़ाती मफ़ाद की बुनियाद पर होता है, इससे ज़्यादा उसकी कोई और हैसियत नहीं।

मज़्कूरा क़िस्म का एडजस्टमेंट मौजूदा दुनिया का एक लाज़िमी क़ानून है। इस मामले में किसी भी शख़्स या गिरोह का कोई इस्तिस्ना (exception) नहीं। इसका मतलब यह है कि मुसलमान अगर उसूली बुनियाद पर एडजस्टमेंट न करें, तो उन्हें मफ़ाद की बुनियाद पर एडजस्टमेंट का मामला करना होगा, मगर ऐसी सूरत में उनका

एडजस्टमेंट इबादत का अमल न होगा, बल्कि वह सिर्फ़ मौका-परस्ती का एक मामला होगा यानी वही चीज़, जिसे शरीयत की ज़बान में मुनाफ़क़त कहा जाता है। उसूल-पसंदी एक आला अख़्लाक़ी सिफ़त है, इसके मुक़ाबले में मौक़ा-परस्ती एक इंतिहाई बुरी सिफ़त।

इस दुनिया में किसी आदमी के लिए सिर्फ़ दो में से एक का चुनाव है— इख़्लास या मुनाफ़क़त। मुख़लिसाना ज़िंदगी में मुनाफ़क़त का कोई मुक़ाम नहीं। इसी तरह मुनाफ़िक़ाना ज़िंदगी में इख़्लास का कोई दर्जा नहीं। दावती मिशन वह वाहिद मिशन है, जो आदमी को इस मामले में मुनाफ़िक़ाना रविश से बचाता है। दावती मिशन आदमी के अंदर यह मिज़ाज पैदा करता है कि वह अपने आला रब्बानी मिशन की ख़ातिर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट का तरीक़ा इख़्तियार करे। बज़ाहिर अगरचे दाई भी एडजस्टमेंट का मामला करता है, मगर उसका एडजस्टमेंट उसूल की बुनियाद पर होता है, न कि मफ़ाद की बुनियाद पर।

यह कोई सादा मामला नहीं। इसका मतलब यह है कि मुसलमान अगर दावती मस्लहत की बिना पर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट न करें, तो उन्हें ज़ाती मस्लहत की बिना पर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट करना पड़ेगा। गोया कि अगर वे दूसरों के दरमियान मुख़लिस बनकर न रहें, तो उन्हें दूसरों के दरमियान मुनाफ़िक़ बनकर रहना होगा और बिला शुब्हा मुनाफ़िक़ाना ज़िंदगी से ज़्यादा बुरी कोई चीज़ इस दुनिया में नहीं।

हक़ीक़त यह है कि सब्र भी शुक्र ही की एक सूरत है। ना-ख़ुशगवार सूरतेहाल को रज़ामंदी के साथ क़ुबूल करना और उसे ख़ुदा की तरफ़ से आया हुआ मानकर मुस्बत ज़ेहन के तहत उसका इस्तिक़बाल करना यही सब्र है और यह सब्र हमेशा शाकिराना क़ल्ब से ज़ाहिर होता है। ना-शुक्री से भरा हुआ दिल कभी सब्र का सबूत नहीं दे सकता।

सेल्फ़ डिसिप्लिन

मार्क्सी लीडर जोसेफ़ स्टालिन (Joseph Stalin) ने कम्युनिस्ट इंक़लाब (1917) से पहले अपनी एक तक़रीर में कहा था कि हमें इंक़लाब के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत है— अव्वल हथियार, दोम हथियार, सोम हथियार, आख़िर में फिर हथियार। यह झूठे इंक़लाब का फ़ॉर्मूला था। सच्चे इंक़लाब का फ़ॉर्मूला यह है— अव्वल सब्र, दोम सब्र, सोम सब्र, आख़िर में फिर सब्र।

सब्र क्या है? सब्र दरअसल पुर-अमन मबनी दानिश-मंदाना मंसूबाबंदी (planning) का नाम है। सब्र यह है कि वक़्त और ताक़त का कोई मामूली हिस्सा भी बेफ़ायदा टकराव में ज़ाए न किया जाए, बल्कि सारी हासिल-शुदा एनर्जी को सिर्फ़ एक मक़सद के लिए इस्तेमाल किया जाए यानी टकराव को नज़र-अंदाज करना और दस्तयाब मौक़े को भरपूर तौर पर इस्तेमाल करना।

सब्र दरअसल यह है कि आदमी रद्दे-अमल (reaction) से अपने आपको बचाए, वह दानिश-मंदाना तदबीर के ज़रिये अपने अमल की मंसूबाबंदी करे। साबिराना मंसूबाबंदी सिर्फ़ वह शख़्स कर सकता है, जो हालात से ऊपर उठकर सोचे, जो पैदाशुदा मवाक़े को इस्तेमाल करने वाला बन जाए।

तारीख़ के तमाम तजुर्बात बताते हैं कि हथियार या जंग सिर्फ़ बर्बादी का सबब है। जब भी किसी ने हक़ीक़ी मआनों में कोई कामयाबी हासिल की है, तो वह पुरअमन जद्दोजहद के ज़रिये हासिल की है। पुर-तशद्दुद अमल का नतीजा नाकामयाबी है। हर शख़्स लाज़िमी तौर पर पुर-अमन अमल की बुनियाद पर अपना मंसूबा बनाएगा।

सब्र का तरीक़ा साबित-शुदा तौर पर बेहतर तरीक़ा है। फिर क्यों ऐसा है कि लोग सब्र का तरीक़ा इख़्तियार नहीं करते। इसका वाहिद सबब यह है कि सब्र अपने आप पर सेल्फ़ कंट्रोल का तक़ाज़ा करता है। सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करने के लिए अपने जज़्बात पर क़ाबू रखना ज़रूरी होता है। सब्र दरअसल सेल्फ़ डिसिप्लिन का नाम है और बिला शुब्हा सेल्फ़ डिसिप्लिन से ज़्यादा मुश्किल कोई काम इंसान के लिए नहीं।

एडजस्टमेंट का फ़ॉर्मूला

मर्द का मसला यह है कि वह ईगोइस्ट (egoist) होता है। औरत का मसला यह है कि वह इमोशनल (emotional) होती है। ये दोनों सिफ़तें पैदाइशी सिफ़तें हैं। इन्हें बदलना किसी भी हाल में मुमकिन नहीं। अगर आप इस हक़ीक़त को जान लें, तो आपके लिए औरत और मर्द दोनों के साथ मामला (deal) करना आसान हो जाएगा। इसका मुख़्तसर फ़ॉर्मूला यह है कि मर्द के ईगो को न छेड़ें और औरत के जज़्बातों से न टकराइए। यही फ़ॉर्मूला ख़ानदानी ज़िंदगी में भी कार-आमद है और समाजी ज़िंदगी में भी।

हक़ीक़त यह है कि इस दुनिया में मामलात हमेशा टकराव की बिना पर बिगड़ते हैं। टकराव से एराज़ करना ही पुर-आफ़ियत ज़िंदगी का वाहिद कामयाब फ़ॉर्मूला है। इसके सिवा कोई और फ़ॉर्मूला अमली तौर पर इस दुनिया में मुमकिन नहीं। इस फ़ॉर्मूले को एक लफ़्ज़ में 'टकराव मैनेजमेंट' (conflict management) कहा जा सकता है।

टकराव से एराज़ करना सिर्फ़ एक अख़्लाक़ी मामला नहीं, यह ख़ुद अपनी तामीर (self-development) का सबसे बड़ा ज़रिया है। जब

आप टकराव से बचते हैं, तो नतीजे के एतिबार से इसका दूसरा मतलब यह होता है कि आपने अपना वक़्त बचाया, अपनी एनर्जी (energy) बचाई, आपने अपना माल बचाया, आपने अपने आपको इस क़ाबिल बनाया कि किसी वक़्फ़े के बग़ैर अपनी ज़िंदगी का सफ़र जारी रखें। आप ग़ैर-ज़रूरी तौर पर ज़ेहनी तनाव (tension) का शिकार नहीं हुए, बल्कि आपने अपने ज़ेहन को कामिल तौर पर मुस्बत सोच के लिए फ़ारिग़ रखा वग़ैरह।

कामयाब ज़िंदगी 50 फ़ीसद ख़ुद अपने इस्तेमाल का नाम है और 50 फ़ीसद दूसरों से मुवाफ़िक़त (adjustment) करने का नाम है। यह एक अटल फ़ितरी क़ानून है, इसमें किसी का कोई इस्तिस्ना नहीं। कामयाबी के लिए दोनों ही चीज़ें यकसाँ तौर पर ज़रूरी हैं।

जो इंसान इस तक़सीम पर राज़ी न हो, उसे अपने लिए एक और दुनिया की तख़्लीक़ करनी चाहिए, क्योंकि मौजूदा दुनिया में इसके सिवा ज़िंदगी की कोई और सूरत मुमकिन नहीं।

तवासी बिल-हक़, तवासी बिस-सब्र

27 अगस्त, 2007 को मैंने रात में एक ख़्वाब देखा। मैंने देखा कि एक आवाज़ आई। उसने कहा कि उठो। मैंने कहा कि मैं तो उठा हुआ हूँ। उसने कहा कि 'तवासी बिल-हक़ को जानो', 'तवासी बिल-हक़ को जानो', 'तवासी बिल-हक़ को जानो।' मैंने कहा कि मुझे नहीं मालूम कि यह क्या है? उसने कहा, "तवासी बिल-हक़ को जानो।" मैंने कहा कि आप मुझे बताइए। उसने कुछ देर तक मुझे समझाया। मैंने कहा कि आपने जो कहा, मैं इसे समझ नहीं पाया। उसने कहा कि इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि तवासी बिल-हक़ को समझो। इसके बाद मेरी आँख

खुल गई। यह बड़ी अजीब बात है कि ये लफ़्ज़ न मेरे मुताले में थे और न मुझे इनका मफ़हूम मालूम था। मैं जानना चाहता हूँ कि मैं 'तवासी बिल-हक़' को कैसे समझूँ? इसमें आप मेरी मदद फ़रमाएँ।

(हबीब मुहम्मद, हैदराबाद)

'तवासी' का लफ़्ज़ क़ुरआन की सूरह नंबर 103 में आया है। इस सूरह का तर्जुमा यह है—

"ज़माना गवाह है कि बे-शक इंसान घाटे में है। सिवा उन लोगों के, जो ईमान लाए और नेक अमल किया और एक-दूसरे को हक़ की नसीहत की और एक-दूसरे को सब्र की नसीहत की।"

"Time is witness that indeed man is in loss except those people who believe, do righteous deeds, advise each other of truth and advise each other of patience."

क़ुरआन की इस सूरह की अहमियत इतनी ज़्यादा है कि एक रिवायत में आता है कि दो सहाबी जब एक-दूसरे से मिलते थे, तो वे याद-दहानी के लिए आपस में इस सूरह का तज़्किरा करते थे।

(अल-मोजम अल-औसत, अल-तबरानी, हदीस नंबर 5,124)

क़ुरआन की इस सूरह में मोमिनाना ज़िंदगी का कोर्स बताया गया है। यह कोर्स बुनियादी तौर पर तीन अज्ज़ा पर मुश्तमिल है— ईमान, अमल और तवासी। ईमान यह है कि आदमी को शऊर की सतह पर ख़ुदा की मारिफ़त हासिल हो। यह मारिफ़त एक इंसान के लिए ज़ेहनी इंक़लाब के हम-मआनी होती है। इसका मतलब यह होता है कि आदमी ने अपनी तलाश का जवाब पा लिया। आदमी को अपनी फ़िक्री सरगर्मियों के लिए सही फ्रेमवर्क मिल गया। आदमी को ज़ाहिरी तौर पर देखने की सलाहियत समझने की सलाहियत हासिल हो गई।

आदमी को अपनी ज़ेहनी जद्दोजहद का मर्कज़ हासिल हो गया। आदमी के अंदर उस हस्ती का शऊर पैदा हो गया, जिससे वह सबसे ज़्यादा डरे और जिससे वह सबसे ज़्यादा मुहब्बत करे।

इस कोर्स का दूसरा जुज़ अमल-ए-सालेह है। अमल-ए-सालेह से मुराद वह अमल है, जो ऐन हक़ीक़त-ए-वाक़या के मुताबिक़ हो। अमल-ए-सालेह की इस फ़ेहरिस्त में ज़िक्र-ओ-दुआ, इबादात, अख़्लाक़ और मामलात वग़ैरह सब शामिल हैं। हर वह काम, जिसमें इंसान का जिस्मानी वजूद शामिल होता है, वह सब उसका अमल है और यह मतलूब है कि इन तमाम आमाल को सालिहिय्यत की बुनियाद पर क़ायम किया जाए। हक़ीक़त यह है कि इंसानी अमल की दो क़िस्में हैं— एक, ख़ुदरुख़ी (self-oriented) अमल और दूसरा, ख़ुदारुख़ी (God-oriented) अमल। इस्लामी शरीयत में ख़ुदरुख़ी अमल का दूसरा नाम ग़ैर-सालेह अमल है और ख़ुदारुख़ी अमल का दूसरा नाम सालेह अमल।

इस कोर्स का तीसरा जुज़ तवासी है। तवासी के लफ़्ज़ में साझेदारी का मफ़हूम पाया जाता है। इसका मतलब है— एक-दूसरे को नसीहत करना। दो आदमी एक-दूसरे की ख़ैर-ख़्वाही के जज़्बे के तहत संजीदा मौज़ूआत पर एक-दूसरे के साथ जो गुफ़्तुगू करें, उसका नाम तवासी है। दूसरे लफ़्ज़ों में, यह कह सकते हैं कि तवासी नाम है— बाहमी तबादला-ए-ख़याल (mutual discussion) का। दीनी मौज़ूआत पर बाहमी डिस्कशन किसी मोमिन की ज़िंदगी का इसी तरह एक नागुज़ीर हिस्सा है, जिस तरह ईमान और अमल-ए-सालेह।

यह बाहमी तबादला-ए-ख़्याल या इंटेलेक्चुअल ऐक्सचेंज (intellectual exchange) ज़ेहनी तरक़्क़ी के लिए बेहद ज़रूरी है। हक़ीक़त यह है कि इंटेलेक्चुअल ऐक्सचेंज के बग़ैर ज़ेहनी तरक़्क़ी बिलकुल मुमकिन नहीं। जब दो आदमी संजीदगी के साथ एक मौज़ू

पर तबादला-ए-ख़याल करें, तो दो आदमियों की गुफ़्तुगू के दौरान एक तीसरा तसव्वुर इमर्ज (emerge) करता है, जिस तरह दो पत्थरों के टकराने से एक तीसरी चीज़ निकलती है यानी चिंगारी। इसी तरह बाहमी तबादला-ए-ख़याल दोनों के लिए ज़ेहनी इर्तिक़ा का ज़रिया बनता है।

अहले-ईमान के लिए तवासी के इस अमल का मौज़ू सिर्फ़ दो है और वह है— हक़ और सब्र। हक़ में तमाम मुस्बत मौज़ूआत शामिल हैं। मसलन क़ुरआन और हदीस के गहरे मआनी को समझने के लिए बाहमी तबादला-ए-ख़याल करना।

डिसिप्लिन की अहमियत

डिसिप्लिन (discipline) का मतलब कंट्रोल है। डिसिप्लिन को एक लफ़्ज़ में कंट्रोल्ड किरदार (controlled behaviour) कह सकते हैं। इसका ताल्लुक़ दरअसल इज्तिमाई ज़िंदगी से है। सादा तौर पर कह सकते हैं कि डिसिप्लिन का मतलब है— अमली ज़िंदगी में दूसरों की रिआयत करना।

ज़िंदगी की दो सूरतें हैं। एक यह कि आदमी सिर्फ़ अपने आपको जाने। वह अपनी ख़्वाहिश के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारे। उसके अंदर दूसरों की परवाह करने का मिज़ाज न हो। ऐसी ज़िंदगी डिसिप्लिन के ख़िलाफ़ ज़िंदगी है। इसके बरअक्स दूसरा इंसान वह है, जो दूसरों की रिआयत करना जानता हो, जो अपनी गुफ़्तुगू और अपने सुलूक में हमेशा यह ध्यान रखे कि दूसरों के ऊपर उसका क्या असर पड़ेगा। उसकी किसी बात पर दूसरा शख़्स नागवारी का इज़हार करे, तो वह फ़ौरन अपनी ग़लती को मानते हुए अपनी इस्लाह करे। यही डिसिप्लिन के साथ ज़िंदगी गुज़ारना है।

डिसिप्लिन कोई सादा चीज़ नहीं। डिसिप्लिन दरअसल कायनाती अख़्लाक़ का दूसरा नाम है। वसीअ ख़ला में सय्यारे और सितारे मुसलसल तौर पर हरकत करते हैं, लेकिन इनमें कभी टकराव नहीं होता, जंगल में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के जानवर रहते हैं, लेकिन हर एक अपनी जिबिल्लत (instinct) की कामिल तौर पर पाबंदी करता है। यही वह पाबंद किरदार है, जिसे इंसानी ज़िंदगी के एतिबार से डिसिप्लिन कहा जाता है।

यह डिसिप्लिन बेहद ज़रूरी है। यह आदमी की शराफ़त की पहचान है। यह किसी आदमी की बुलंद अख़्लाक़ी को बताता है। डिसिप्लिन के साथ जीने वाला इंसान ही दरअसल कामिल मआनों में इंसान है। जो शख़्स डिसिप्लिन से ख़ाली हो, वह गोया आला इंसानी अख़्लाक़ से ख़ाली है। यह डिसिप्लिन किसी के अंदर ज़ाहिरी नियम से नहीं पैदा होता, वह आदमी के अंदरूनी एहसास से पैदा होता है। डिसिप्लिन का आला दर्जा यह है कि आदमी दूसरों के लिए मदद करने वाला बने और डिसिप्लिन का कम-से-कम दर्जा यह है कि आदमी दूसरे के लिए ज़हमत (nuisance) पैदा करने का बाइस न बने।

रात और दिन

क़ुरआन की सूरह अल-इस्रा में इरशाद हुआ है—

> “और इंसान बुराई माँगता है, जिस तरह उसे भलाई माँगनी चाहिए और इंसान बड़ा जल्दबाज़ है और हमने रात व दिन को दो निशानियाँ बनाया। फिर हमने रात की निशानी को मिटा दिया और दिन की निशानी को हमने रोशन कर दिया, ताकि तुम अपने रब का फ़ज़्ल तलाश करो और ताकि तुम बरसों की

गिनती और हिसाब मालूम करो और हमने हर चीज़ को ख़ूब खोलकर बयान किया है।" (17:11-12)

रात और दिन का निज़ाम बताता है कि ख़ुदा का तरीक़ा यह है कि पहले अँधेरा हो और इसके बाद रोशनी आए। ख़ुदाई नक़्शे में दोनों यकसाँ तौर पर ज़रूरी हैं। जिस तरह रोशनी में फ़ायदे हैं, इसी तरह अँधेरे में भी फ़ायदे हैं। दुनिया में अगर रात और दिन का फ़र्क़ न हो, तो आदमी अपने औक़ात की तक़सीम किस तरह करे। वह अपने काम और आराम का निज़ाम किस तरह बनाए।

आदमी को ऐसा नहीं करना चाहिए कि वह अँधेरे से घबराए और सिर्फ़ रोशनी का तालिब बन जाए, क्योंकि ख़ुदा की दुनिया में ऐसा होना मुमकिन नहीं। जो आदमी ऐसा चाहता हो, उसे ख़ुदा की दुनिया छोड़कर अपने लिए दूसरी दुनिया तलाश करनी पड़ेगी, मगर यही इंसान की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। वह हमेशा यह चाहता है कि उसे अँधेरे का मरहला पेश न आए और फ़ौरन ही उसे रोशनी हासिल हो जाए। इसी कमज़ोरी का नतीजा वह चीज़ है, जिसे जल्दबाज़ी कहा जाता है। जल्दबाज़ी दरअसल ख़ुदावंदी मंसूबे पर राज़ी न होने का दूसरा नाम है और ख़ुदावंदी मंसूबे पर राज़ी न होना ही तमाम इंसानी बर्बादियों का असल सबब है।

ख़ुदा चाहता है कि इंसान दुनिया की फ़ौरी लज़्ज़तों पर सब्र करे, ताकि वह आख़िरत की तरफ़ अपने सफ़र को जारी रख सके, मगर इंसान अपनी जल्दबाज़ी की वजह से दुनिया की वक़्ती लज़्ज़तों पर टूट पड़ता है। वह आगे की तरफ़ अपना सफ़र तय नहीं कर पाता। आदमी की जल्दबाज़ी उसे आख़िरत की नेअमतों से महरूम करने का सबसे बड़ा सबब है। यही दुनिया का मामला भी है। दुनिया में हक़ीक़ी कामयाबी सब्र से मिलती है, न कि जल्दबाज़ी से।

सब्र, मुहासबा, तवस्सुम

ईमान के बाद मतलूब ज़िंदगी की तामीर के लिए तीन बुनियादी चीज़ों की ज़रूरत है। इन तीनों चीज़ों को इख़्तियार किए बग़ैर कोई शख़्स सच्चा मोमिन नहीं बन सकता। वे तीन चीज़ें ये हैं— सब्र, मुहासबा और तवस्सुम।

ईमान लाने के बाद हर मोमिन के लिए सबसे पहला मरहला यह पेश आता है कि अपने माहौल के अंदर वह किस तरह मोमिनाना ज़िंदगी गुज़ारे। क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ यहाँ हर लम्हा ग़ैर-मुवाफ़िक़ बातें पेश आती हैं। ऐसी बातें, जो आदमी को बे-बरदाश्त कर दें। ऐसे तमाम मौक़ों पर आदमी को सब्र करना पड़ता है, ताकि भटकाव (distraction) के बग़ैर वह मुसलसल तौर पर ईमान के रास्ते पर क़ायम रहे।

दूसरी चीज़ मुहासबा (introspection) है। इम्तिहान की इस दुनिया में आदमी बार-बार ग़लती करता है। इस वक़्त यह ज़रूरत होती है कि बे-लाग मुहासबा करके अपनी इस्लाह की जाती रहे। फ़ौरी मुहासबे के इस अमल के बग़ैर यह होगा कि ग़लतियाँ आदमी की शख़्सियत का हिस्सा बन जाएँगी और फिर वे कभी इससे जुदा न होंगी।

इस सिलसिले में तीसरी चीज़ तवस्सुम है। तवस्सुम का मतलब है— ग़ौर-ओ-फ़िक्र की ज़िंदगी गुज़ारना, अपने तजुर्बात और अपने आस-पास की दुनिया से मुसलसल तौर पर नसीहत और सबक़ लेते रहना। यह तवस्सुम मोमिन के लिए उसकी ईमानी ग़िज़ा है। मुसलसल तवस्सुम के बग़ैर कोई शख़्स अपने आपको ईमानी तरक़्क़ी के रास्ते का मुसाफ़िर नहीं बना सकता।

इस्लामी ज़िंदगी ईमान से शुरू होती है, मगर ईमान इस्लामी ज़िंदगी का सिर्फ़ आग़ाज़ है, वह उसकी आख़िरी मंज़िल नहीं। इस आग़ाज़ के बाद आदमी को मुसलसल तौर पर एक कोर्स से गुज़रना पड़ता है। इस कोर्स की तकमील के बग़ैर हक़ीक़ी मआनों में कोई शख़्स मोमिन व मुस्लिम के दर्जे तक नहीं पहुँच सकता। इस कोर्स के अज्ज़ा बुनियादी तौर पर यही तीन हैं— सब्र, मुहासबा और तवस्सुम। यह कोर्स किसी क़िस्म के रस्मी आमाल के ज़रिये अंजाम नहीं पाता। यह मुकम्मल तौर पर एक शऊरी सफ़र है। अपने शऊर को बेदार करके ही आदमी इस इम्तिहान में कामयाब हो सकता है।

एराज़

इस्लाम का एक अहम मुआशरती उसूल एराज़ (Avoid) है यानी शिकायत और इख़्तिलाफ़ के मौक़े पर टकराव से परहेज़ करना। इश्तिआल के मौक़े पर रद्दे-अमल का तरीक़ा इख़्तियार करते हुए अपने आपको मुस्बत रवैये पर क़ायम रखना। हर मर्द और औरत का मिज़ाज दूसरे मर्द और औरत से मुख़्तलिफ़ होता है। इसी तरह एक-दूसरे के दरमियान और बहुत-से फ़र्क़ हैं, जिसकी बिना पर बार-बार एक को दूसरे से ना-ख़ुशगवारी का तजुर्बा पेश आता है। एक-दूसरे के दरमियान इख़्तिलाफ़ की सूरतें पैदा हो जाती हैं। इज्तिमाई ज़िंदगी में ख़्वाह वह घर के अंदर की हो या घर के बाहर की, इस तरह की ना-पसंदीदा सूरतेहाल का पेश आना बिलकुल फ़ितरी है। इसे रोकना किसी हाल में मुमकिन नहीं।

अब एक तरीक़ा यह है कि हर इख़्तिलाफ़ से टकराव किया जाए। हर ना-ख़ुशगवारी से बराह-ए-रास्त मुक़ाबला करके इसे दूर करने की कोशिश की जाए। इस तरह की कोशिश ग़ैर-फ़ितरी है, इसलिए कि वह मसले को सिर्फ़ बढ़ाने वाली है। वह हरगिज़ उसे घटाने वाली नहीं।

इस्लाम में ऐसे मौक़े पर एराज़ की तालीम दी गई है यानी ना-ख़ुशगवार सूरतेहाल को मिटाने के बजाय उसे बरदाश्त करना, इश्तिआल-अंगेज़ी का मुक़ाबला करने के बजाय उसे नज़र-अंदाज करना, इख़्तिलाफ़ के बावजूद लोगों के साथ मुत्तहिद होकर रहना।

इस्लाम के मुताबिक़ यह सिर्फ़ एक समाजी तरीक़ा नहीं है, बल्कि वह एक अज़ीम सवाब भी है। लोगों के दरमियान अच्छे तरीक़े से रहना आम हालात में भी एक सवाब है, मगर जब कोई शख़्स शिकायत और इख़्तिलाफ़ के बावजूद लोगों के साथ अच्छे रवैये पर क़ायम रहे, वह अपने मनफ़ी जज़्बात को दबाकर मुस्बत रविश का सबूत दे, तो इसका सवाब बहुत बढ़ जाता है। ख़ुदा के यहाँ ऐसे लोगों का शुमार मुहसिनीन में किया जाएगा यानी वे लोग, जिन्होंने दुनिया की ज़िंदगी में बेहतर अख़्लाक़ और आला इंसानियत का सबूत दिया। एराज़ के बग़ैर आला इंसानी किरदार पर क़ायम रहना मुमकिन नहीं।

एराज़ की हिकमत

एराज़ (avoidance) ज़िंदगी का एक अहम उसूल है। एराज़ का ताल्लुक़ दावती मिशन से भी है और ज़िंदगी के दूसरे मामलात से भी। एराज़ के उसूल को इख़्तियार किए बग़ैर इस दुनिया में कोई भी काम दुरुस्त तौर पर अंजाम नहीं दिया जा सकता।

असल यह है कि मौजूदा दुनिया में हर फ़र्द और हर क़ौम को ख़ालिक़ की तरफ़ से आज़ादी हासिल है। हर आदमी को यह मौक़ा हासिल है कि वह अपनी सोच के मुताबिक़ अपनी आज़ादी का इस्तेमाल करे। ज़िंदगी का यही वह मामला है, जिसकी बिना पर लोगों के दरमियान इख़्तिलाफ़ात (differences) पैदा होते हैं।

इख़्तिलाफ़ इज्तिमाई ज़िंदगी का एक लाज़िमी हिस्सा है, जिसे ख़त्म नहीं किया जा सकता।

एक शख़्स जिसकी ज़िंदगी का एक मिशन हो, उसे जानना चाहिए कि मिशन का लाज़िमी उसूल यह है कि आदमी इख़्तिलाफ़ी उमूर को नज़र-अंदाज करते हुए अपना मिशन चलाए। वह दूसरे लोगों से उलझे बग़ैर मुस्बत ज़ेहन के साथ अपने मंसूबे की तकमील में लगा रहे।

एराज़ के उसूल की अहमियत जितनी दूसरे मामलात में है, इससे बहुत ज़्यादा दावत के मामले में है। हक़ीक़त यह है कि दावत इलल्लाह का काम एराज़ के बग़ैर अमलन मुमकिन नहीं। दावत का निशाना लोगों को आख़िरत से बाख़बर करना है। इस मिशन को दुरुस्त तौर पर अंजाम देने के लिए ज़रूरी है कि दाई के अंदर यकसूई का मिज़ाज हो। उसके अंदर यह सलाहियत हो कि वह अहले-दुनिया की तरफ़ से छेड़े हुए मसाइल को मुकम्मल तौर पर नज़र-अंदाज (ignore) करे और पूरी यकसूई के साथ लोगों को आख़िरत की तरफ़ पुकारता रहे। जो लोग दावत का नाम लें, लेकिन वे अहले-दुनिया की तरफ़ से छेड़े हुए मसाइल में उलझे रहें, वे कभी ख़ुदा के यहाँ दाई का मुक़ाम हासिल नहीं कर सकते। ऐसे लोगों की कोशिशें, क़ुरआन के मुताबिक़, दुनिया में हब्त-ए-आमाल (18:104) का शिकार हो जाएँगी। वे दुनिया और आख़िरत में ख़सारा का शिकार होकर रह जाएँगी।

मुस्बत तजुर्बा

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में कई ग़ज़्वात पेश आए, उनमें से एक वह है, जिसे ग़ज़्वा-ए-उहद कहा जाता है। इस ग़ज़्वा में मुसलमानों में से 70 आदमी मारे गए थे और 70 ज़ख़्मी

हुए थे, यहाँ तक कि रसूलुल्लाह भी ज़ख़्मी हो गए थे। इस मुनास्बत से यह आयत नाज़िल हुई—

فَأَثَابَكُمْ غَمًّا بِغَمٍّ لِكَيْلَا تَحْزَنُوا عَلَى مَا فَاتَكُمْ وَلَا مَا أَصَابَكُمْ.

"फिर अल्लाह ने तुमको ग़म पर ग़म दिया, ताकि तुम रंजीदा न हो उस चीज़ पर, जो तुम्हारे हाथ से खोई गई और न उस मुसीबत पर, जो तुम पर पड़े।" (3:153)

इस मौक़े पर क़ुरआन में यह नसीहत की गई—

ताकि तुम रंजीदा न हो उस चीज़ पर, जो तुम्हारे हाथ से खोई गई।
So that you might not grieve for what you lost.

यहाँ रंजीदा बराए रंजीदा नहीं हो सकता। ज़रूर है कि रंजीदा न होने का कोई मुस्बत मक़सद हो। वह मक़सद यह है कि ग़ज़्वा-ए-उहद के मौक़े पर जो कुछ पेश आया, वह बज़ाहिर एक मनफ़ी वाक़या था, लेकिन तुम्हें चाहिए कि इस मनफ़ी वाक़ये को मुस्बत तजुर्बे में बदलो। ऐसा किस तरह हो सकता है। ऐसा इस तरह हो सकता है कि लोग ख़ालिस ग़ैर-मुतास्सिर ज़ेहन के तहत पूरे मामले पर सोचें और ख़ालिस सोच के ज़रिये इस नतीजे तक पहुँचे कि मौत ज़िंदगी का ख़ात्मा नहीं, बल्कि वह नई ज़िंदगी का आग़ाज़ है।

मुसीबत पर रंजीदा न होना कोई सादा बात नहीं। इसका मतलब है कि आदमी अपनी जिस्मानी मुसीबत को ज़ेहनी मुसीबत न बनाए। वह ऐसा न करे कि उससे जो कुछ खोया गया, उसके ग़म में अपना यह हाल कर ले कि जो कुछ अब भी उसके पास बाक़ी है, उससे ग़ाफ़िल हो जाए। आदमी को चाहिए कि वह खोए हुए को फ़रामोशी के ख़ाने में डाले और जो कुछ अब भी उसे पास बचा हुआ है, उसे लेकर अपने अमल की नई मंसूबाबंदी करे। यही इस दुनिया में कामयाबी का राज़ है। इस दुनिया में हर एक को नुक़सान का तजुर्बा होता है। अक़्लमंद वह है,

जो बचे हुए को जाने और इसकी बुनियाद पर अपने लिए नई ज़िंदगी की तामीर करे। इसी का नाम दानिशमंदी है और यही दानिशमंदी इस दुनिया में कामयाबी का वाहिद राज़ है।

मनफ़ी सोच का मिज़ाज

क़ुरआन में एक किरदार का ज़िक्र इन अल्फ़ाज़ में आया है। ये दो आयतें हैं, उनका तर्जुमा यहाँ नक़ल किया जा रहा है—

> "और उन्हें उस शख़्स का हाल सुनाओ, जिसे हमने अपनी आयतें दी थीं, तो वह उनसे निकल भागा। पस शैतान उसके पीछे लग गया और वह गुमराहों में से हो गया और अगर हम चाहते, तो उसे इन आयतों के ज़रिये बुलंदी अता करते, मगर वह तो ज़मीन का हो रहा और अपनी ख़्वाहिशों की पैरवी करने लगा। पस उसकी मिसाल कुत्ते की-सी है कि अगर तो उस पर बोझ लादे, तब भी हाँफे और अगर छोड़ दे, तब भी हाँफे। यह मिसाल उन लोगों की है, जिन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया। पस तुम यह अहवाल उन्हें सुनाओ, ताकि वे सोचें।" (7:175-176)

यहाँ 'आयत' से मुराद रब्बानी रहनुमाई है और 'हाँफने' से मुराद शिकायत का मिज़ाज (complaining mentality) है। जो शख़्स या गिरोह रब्बानी रहनुमाई से सबक़ न ले, वह हर हाल में शैतान का पैरोकार बन जाएगा। एक सूरतेहाल में एक क़िस्म की मनफ़ी बात कहेगा और अगर सूरतेहाल बदल जाए, तो वह दूसरी क़िस्म की मनफ़ी बात बोलना शुरू कर देगा। मसलन एक शख़्स अगर शैतान के ज़ेरे-असर मनफ़ी अंदाज़ में सोचने का आदी बन जाए, तो उसका हाल यह होगा कि अगर उसे एक एतिबार से अच्छे हालात मिलें, तो वह ग़लत तक़ाबुल करके उसमें शिकायत का एक पहलू निकाल लेगा और अगर

हालात बदल जाएँ, तो वह दोबारा अपनी बे-एतराफ़ी के मिज़ाज की बिना पर एक और पहलू शिकायत का निकाल लेगा। वह दोनों हालात में मनफ़ी बोली बोलेगा। एक नौइय्यत के हालात हों, तब भी और दूसरी नौइय्यत के हालात हों, तब भी।

असल यह है कि क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़, ज़िंदगी किसी के लिए भी मुकम्मल तौर पर बे-मसला नहीं होती। कभी एक मसला तो कभी दूसरा मसला। इस मामले का हल सिर्फ़ एक है। वह यह कि आदमी अपनी मनफ़ी सोच को बदले। वह बज़ाहिर शिकायत के हालात में भी मुस्बत ज़ेहन से सोचने का तरीक़ा अपनाए, वह मुकम्मल तौर पर मुस्बत अंदाज़ में सोचने वाला बन जाए।

अपनी तामीर आप

क़ुरआन में एक नफ़्सियाती हक़ीक़त को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

بَلِ الْإِنْسَانُ عَلَى نَفْسِهِ بَصِيرَةٌ وَلَوْ أَلْقَى مَعَاذِيرَهُ.

"इंसान (सही और ग़लत के मामले में) अपने आपसे ख़ूब बा-ख़बर है। चाहे वह कितने ही उज़्रात पेश करे।" (75:14-15)

क़ुरआन की इस आयत में एक नफ़्सियाती हक़ीक़त 'ज़मीर' का हवाला दिया गया है यानी इस बात का अंदरूनी एहसास कि किसी तर्ज़-ए-अमल या सोच में क्या ग़लत है और क्या सही। यह नफ़्सियाती हक़ीक़त हर इंसान के लिए एक हुज्जत दाख़िली की हैसियत रखती है। इंसान बज़ाहिर दूसरे हैवानात की तरह एक हैवान है, मगर इंसान की ख़ुसूसियत यह है कि उसके अंदर एक ऐसी सिफ़त पाई जाती है, जो किसी और हैवान के अंदर नहीं है। यह ज़मीर (conscience) की सिफ़त है।

ख़ुदा के तख़्लीक़ी नक़्शे के मुताबिक़, इंसान को इस बात की कामिल आज़ादी दी गई है कि वह जिस तरह चाहे सोचे और जिस तरह चाहे बोले और लिखे, मगर इंसान के अंदर पैदाइशी तौर पर यह शऊर मौजूद है कि वह बुराई और भलाई में तमीज़ करे। इंसान का ज़मीर सही अमल की तरफ़ उसकी रहनुमाई करता है। यह फ़र्क़ बताता है कि इंसान से यह मतलूब है कि वह एक सेल्फ़ मेड मैन (self-made man) बने और इसकी सूरत यह है कि वह अपनी निगरानी ख़ुद करे। वह अपने अंदर सेल्फ़ करेक्शन (self-correction) का प्रोसेस जारी करे। वह 'अपनी तामीर आप' का नमूना बन जाए।

इंसान को उसके ख़ालिक़ ने मिक्सचर ऑफ ऑपोज़िट्स (mixture of opposites) बनाया है। यह इंसान के ऊपर उसके ख़ालिक़ का एहसान-ए-अज़ीम है। ख़ालिक़ यह चाहता है कि इंसान सेल्फ़ डिस्कवरी (self-discovery) की सतह पर खड़ा हो। वह अपनी ग़लती को ख़ुद दरयाफ़्त करके उसकी इस्लाह करता रहे। ख़ुदा की किताब और कायनात की निशानियाँ बिला शुबहा इंसान के लिए मददगार हैं। इसी के साथ इंसान को यह करना है कि वह अपने आपको ख़ुद अपने अमल से जन्नत के लिए एक मुस्तहिक़ उम्मीदवार (deserving candidate) बनाए।

इंसान के लिए अल्लाह ने जन्नत को मुक़द्दर किया है। जन्नत इंसान का हैबिटैट (habitat) है। जन्नत वह जगह है, जहाँ इंसान की तमाम ख़्वाहिशें पूरी होंगी, जहाँ इंसान को मुकम्मल मआनों में फ़ुलफ़िल्मेंट (fulfilment) हासिल होगा। इस क़िस्म की जन्नत बिला शुबहा इंसान के लिए ख़ालिक़ का सबसे बड़ा अतिया है।

इंसान के ऊपर ख़ालिक़ का मज़ीद एहसान यह है कि उसने यह फ़ैसला किया कि इंसान को जन्नत यह कहकर दी जाए कि तुम्हें जन्नत योग्यता के आधार पर दी जा रही है, अगरचे देने वाला फिर भी ख़ालिक़ होगा। ख़ालिक़ के बग़ैर इंसान इस दुनिया में कोई भी चीज़ हासिल नहीं

कर सकता, लेकिन यह ख़ालिक़ की ख़ुसूसी इनायत है कि वह इंसान को जन्नत यह कहकर दे कि तुमने अपने अमल से अपने आपको जन्नत का मुस्तहिक़ साबित किया है, इसलिए तुम्हें जन्नत दी जा रही है। अब तुम इसमें अबदी तौर पर ख़ौफ़ और कष्ट से महफ़ूज़ होकर क़ियाम करो।

इस सिलसिले में एक हदीस का मुताला बहुत अहम है। वह हदीस इन अल्फ़ाज़ में आई है—

وَالَّذِي نَفْسِي بِيَدِهِ لَوْ لَمْ تُذْنِبُوا لَذَهَبَ اللهُ بِكُمْ، وَلَجَاءَ بِقَوْمٍ يُذْنِبُونَ، فَيَسْتَغْفِرُونَ اللهَ فَيَغْفِرُ لَهُمْ.

"यानी उस ज़ात की क़सम, जिसके हाथ में मेरी जान है। अगर तुम गुनाह न करो, तो अल्लाह तुम्हें हटा देगा और ऐसी क़ौम को लाएगा, जो गुनाह करे, फिर अल्लाह से मग़फ़िरत तलब करे, तो अल्लाह उन्हें माफ़ फ़रमा देगा।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,749)

इस हदीस में गुनाह और मग़फ़िरत का ज़िक्र है। इससे मालूम होता है कि इस मामले में ज़्यादा अहम बात क्या है। वह गुनाह और मग़फ़िरत के दरमियान जारी होने वाला नफ़्सियाती अमल (psychological process) है। जब इंसान कोई गुनाह करता है, तो वह उसके ईगो (ego) का फ़ेल होता है, मगर ऐन उसी वक़्त इंसान की दूसरी सिफ़त ज़मीर जाग उठती है। उसके अंदर शदीद नदामत का अमल जारी हो जाता है। इस तरह इंसान के अंदर एक दाख़िली स्ट्रगल (struggle) जारी हो जाता है यानी ईगो और ज़मीर या सेल्फ़ और एंटी सेल्फ़ के दरमियान दाख़िली स्ट्रगल। इस दाख़िली स्ट्रगल के ज़रिये इंसान के अंदर एक नई शख़्सियत उभरकर सामने आती है। यह शख़्सियत एहसास-ए-ख़ता के बग़ैर नहीं बन सकती।

इंसान की रिआयत

नफ़रत के जवाब में नफ़रत पैदा होती है और मुहब्बत के जवाब में मुहब्बत। इसलिए इस्लाम ने यह तरीक़ा सिखाया है कि किसी को ग़लती करते देखो, तो उसे हिकमत और मुहब्बत के साथ समझाओ, जिस तरह एक बाप अपने बेटे को समझाता है।

हज़रत अनस से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने असहाब को ख़िताब करते हुए फ़रमाया—

يَسِّروا ولا تعسِّرُوا، وبشِّروا ولاتُنَفِّرُوا.

"तुम लोगों के साथ आसानी का मामला करो, तुम लोगों के साथ सख़्ती का मामला न करो। तुम लोगों को ख़ुश-ख़बरी दो, तुम लोगों को बेज़ार न करो।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 69)

हज़रत अबदुल्लाह इब्न मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि एक शख़्स नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आया और कहा कि मैं फ़ज्र की जमात में इसलिए पीछे रह जाता हूँ कि फ़ुलाँ साहब हमारी मस्जिद में नमाज़ पढ़ाते हैं और वे इसे बहुत लंबा कर देते हैं। आप यह सुनकर ग़ज़बनाक हो गए, हत्ता कि इससे ज़्यादा ग़ज़बनाक मैंने आपको कभी नहीं देखा था। फिर आपने तक़रीर करते हुए फ़रमाया—

يَا أَيُّهَا النَّاسُ، إِنَّ مِنْكُمْ مُنَفِّرِينَ، فَمَنْ أَمَّ النَّاسَ فَلْيَتَجَوَّزْ، فَإِنَّ خَلْفَهُ الضَّعِيفَ وَالْكَبِيرَ وَذَا الْحَاجَةِ.

"ऐ लोगो! तुममें कुछ ऐसे हैं, जो लोगों को दीन से दूर कर देते हैं। तुममें से जो शख़्स लोगों की इमामत करे, उसे चाहिए कि

वह लंबी नमाज़ न पढ़ाए, क्योंकि उसके पीछे कोई कमज़ोर है, कोई बूढ़ा है और कोई ज़रूरतमंद।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 704)

हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु एक रिवायत में बताते हैं कि मआज़ बिन जबल रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ आपकी मस्जिद में नमाज़ पढ़ते थे। यहाँ से वापस होकर जाते और अपने मुहल्लेवालों की इमामत करते। एक दिन इन्होंने इशा की नमाज़ पढ़ाई और इसमें सूरह अल-बक़रा पढ़ी। एक आदमी लंबी क़िरअत से घबराकर नमाज़ से अलग हो गया। इसके बाद हज़रत मआज़ उससे खिंचे-खिंचे रहने लगे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ख़बर हुई, तो आपने उस आदमी को कुछ नहीं कहा, अलबत्ता हज़रत मआज़ की बाबत फ़रमाया—

فَتَّانٌ، فَتَّانٌ، فَتَّانٌ.

"फ़ित्ना-अंगेज़, फ़ित्ना-अंगेज़, फ़ित्ना-अंगेज़।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 701)

इस सिलसिले का सबसे ज़्यादा हैरत-अंगेज़ वाक़या वह है, जबकि एक देहाती शख़्स आया और मस्जिद-ए-नबवी में पेशाब करने लगा। लोग उसकी तरफ़ दौड़े, तो आपने लोगों को रोका। जब वह पेशाब से फ़ारिग़ हो चुका, तो आपने गंदगी की सफ़ाई कराई और सहाबा से फ़रमाया—

فَإِنَّمَا بُعِثْتُمْ مُيَسِّرِينَ وَلَمْ تُبْعَثُوا مُعَسِّرِينَ.

"तुम आसानी करने वाले बनाकर भेजे गए हो, सख़्ती करने वाले बनाकर नहीं भेजे गए।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,128)

क़दीम ज़माने में काबा की इमारत एक बार बारिश की ज़्यादती से गिर गई थी। क़ुरैश ने दोबारा बनाया, तो सामान की कमी की वजह से हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के असल नक़्शे पर नहीं बनाया, बल्कि छोटा करके बनाया। आप चाहते थे कि इसे दोबारा असल नक़्शा-ए-इब्राहीमी के मुताबिक़ बनवा दें, मगर इस अंदेशे से कि काबा की इमारत के साथ जो तक़द्दुस शामिल है, इसकी वजह से लोग शायद उसके तोड़ने को बर्दाश्त न कर सकें, इसलिए आपने ऐसा न किया। अतः आपने एक बार हज़रत आइशा से फ़रमाया था—

لَوْلَا حَدَاثَةُ عَهْدِ قَوْمِكِ بِالْكُفْرِ لَنَقَضْتُ الْكَعْبَةَ، وَلَجَعَلْتُهَا عَلَى أَسَاسِ إِبْرَاهِيمَ.

"अगर तुम्हारी क़ौम नई-नई कुफ़्र से न निकली होती, तो मैं बैतुल्लाह को तोड़कर फिर से इब्राहीम की बुनियाद के मुताबिक़ बना देता।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,585; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 1,333)

इन अहादीस-ए-रसूल में दरअसल इंसानी रिआयत की तालीम दी गई है। हदीसों का मुताला करने से मालूम होता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सुन्नतों में से एक सुन्नत यह है कि इंसान के साथ आख़िरी हद तक रिआयत का मामला किया जाए। क़ौल या अमल, किसी में भी शिद्दत का अंदाज़ इख़्तियार न किया जाए।

इस रिआयत का मतलब लोगों को उनके हाल पर छोड़ना नहीं है, बल्कि इसका मतलब यह है कि इस्लाह के अमल के लिए सही नुक़्ता-ए-आग़ाज़ (starting point) इख़्तियार किया जाए। इस्लाह का सही तरीक़ा यह है कि आमाल के ज़ाहिरी पहलुओं के बारे में रिआयत का मामला किया जाए और ज़्यादा ज़ोर और ताकीद आमाल के दाख़िली पहलुओं पर दिया जाए, क्योंकि ज़वाहिर की इस्लाह से

दाख़िली इस्लाह नहीं होती, बल्कि इसके बरअक्स दाख़िली इस्लाह से ज़वाहिर की इस्लाह होती है।

रिआयत का फ़ायदा यह होता है कि आदमी को दीन पर अमल करना ज़्यादा मुश्किल नहीं मालूम होता। वह बेज़ार हुए बग़ैर दीनी आमाल को इख़्तियार करने की कोशिश करता है। इसका नतीजा यह होता है कि पहले आदमी के दाख़िल की इस्लाह होती है, फिर धीरे-धीरे उसके ज़वाहिर भी दीन के रंग में रँग जाते हैं। रिआयत दरअसल हकीमाना तरीक़ेकार का दूसरा नाम है और यह एक वाक़या है कि हक़ीक़ी इस्लाह हमेशा हकीमाना तरीक़ेकार के ज़रिये हासिल होती है, न कि ग़ैर-हकीमाना तरीक़ेकार के ज़रिये। मुस्लेह का तरीक़ा हमेशा रिआयत का होना चाहिए। मुस्लेह का सारा ज़ोर इस पर होना चाहिए कि वह लोगों के अंदर जज़्ब-ए-अमल पैदा करे। अमल का जज़्बा पैदा होते ही आदमी वह काम ख़ुद करने लगता है, जिसे शिद्दत-पसंद मुस्लेह नाकाम तौर पर अंजाम देना चाहता है।

मुस्बत सोच

एक हिंदुस्तानी को पहली बार जापान जाने का मौक़ा मिला। एक रोज़ उन्होंने अपने जापानी मेज़बान से हमदर्दी के तौर पर कहा— "आप लोगों के साथ अमरीका ने बड़ा ज़ुल्म किया। उसने तारीख़ के पहले एटम बम आपके मुल्क पर गिराए और आपके दो शहरों को खंडहर बना दिया।"

"नहीं, कोई ज़ुल्म नहीं!" जापानी ने कहा, "ये बम तो हमारे लिए रहमत साबित हुए। हमारे ये शहर क़दीम तर्ज़ पर आबाद थे। तंग और ख़मदार सड़कें, फ़र्सूदा मकानात, गंदे मुहल्ले। उनका नाम था—

हिरोशिमा और नागासाकी। मामूली हालात में हम नई तर्ज़ पर उनकी तामीर नहीं कर सकते थे, मगर जब जंग ने अचानक उन्हें सफ़हा-ए-हस्ती से मिटा दिया, तो हमें मौक़ा मिल गया और हमने क़दीम मलबे पर इंतिहाई जदीद क़िस्म के मंसूबाबंद शहर आबाद कर दिए।" मुस्बत सोच इसी तरह काम करती है। वह हर बरबादी में अपने लिए नई तामीर के इमकानात ढूँढ लेती है।

मुस्बत सोच की ज़रूरत

मुस्बत सोच (positive thinking) का मतलब क्या है? इससे मुराद वह सोच है, जो हर क़िस्म के मनफ़ी जज़्बात से ख़ाली हो, जिसमें शिकायत और एहतिजाज के बजाय मुकम्मल तौर पर हक़ीक़त-ए-वाक़या की बिना पर राय क़ायम की जाए। मुस्बत सोच वह है, जो हर क़िस्म के फ़ख़्र और तास्सुब से ख़ाली हो। मुस्बत सोच दूसरे अल्फ़ाज़ में मबनी बर हक़ीक़त सोच का नाम है।

मुस्बत सोच का ताल्लुक़ इंसान की पूरी ज़िंदगी से है। मनफ़ी सोच से मनफ़ी शख़्सियत बनती है और मुस्बत सोच से मुस्बत शख़्सियत। मुस्बत सोच फ़ितरत की आवाज़ होती है और मनफ़ी सोच इबलीस की आवाज़। मुस्बत सोच इंसान को पाकीज़ा शख़्सियत बनाती है और मनफ़ी सोच उसकी शख़्सियत को आलूदा शख़्सियत बना देती है। मुस्बत सोच वाले आदमी को जन्नत में बसाने के लिए मुंतख़ब किया जाएगा और मनफ़ी सोच वाला आदमी हमेशा के लिए जन्नत में दाख़िले से महरूम रहेगा।

मनफ़ी सोच से बचना और मुस्बत सोच का तरीक़ा इख़्तियार करना इत्तिफ़ाक़ से नहीं होता। यह ख़ुसूसियत आदमी के अंदर उस वक़्त पैदा

होती है, जबकि वह इस मामले में बहुत ज़्यादा बा-शऊर हो, जब वह शऊरी तौर पर अपने आपको ऐसा बनाने की कोशिश करे। इसके लिए ज़रूरत होती है कि आदमी बराबर अपना मुहासबा करता रहे।

मुस्बत सोच का मामला मुस्बत सोच बराए मुस्बत सोच नहीं है यानी मुस्बत सोच बज़ात-ए-ख़ुद अस्ल-ए-मक़सूद नहीं है, बल्कि मुस्बत सोच का फ़ायदा यह है कि मुस्बत सोच वाला आदमी हर क़िस्म के डिस्ट्रैक्शन (distraction) से बच जाता है। वह इस क़ाबिल हो जाता है कि वह अपने ज़ेहन को सिर्फ़ ज़रूरी बातों में मशग़ूल करे, वह ग़ैर-ज़रूरी बातों में अपने वक़्त को ज़ाए न करे। मुस्बत सोच आदमी को बा-मक़सद इंसान बनाती है। मुस्बत सोच आदमी को ऐसी मसरूफ़ियत से बचाती है, जिसका कोई फ़ायदा न दुनिया में है और न आख़िरत में।

मनफ़ी सोच का नुक़सान

तमाम नाकामियों का सबब मनफ़ी सोच है और तमाम कामयाबियों का सबब मुस्बत सोच। यही एक लफ़्ज़ में ज़िंदगी का ख़ुलासा है। मनफ़ी सोच वाला आदमी इस दुनिया में कभी कामयाब नहीं हो सकता और अगर वह ब-ज़ाहिर कामयाब दिखाई दे, तो उसकी कामयाबी वक़्ती होगी। इसके बरअक्स मुस्बत सोच वाले आदमी के लिए कामयाबी पायदार भी है और यक़ीनी भी।

मनफ़ी सोच क्या है और मुस्बत सोच क्या? मनफ़ी सोच यह है कि आदमी अपने आपको जाने, मगर वह दूसरों को न जाने। वह मसाइल को जाने, मगर वह मौक़े को न जाने। वह हाल को जाने, मगर वह मुस्तक़बिल से बे-ख़बर हो। वह अपने क़रीबी हालात को जाने, मगर वह दौर के हालात से बा-ख़बर न हो।

मनफ़ी सोच वाले आदमी की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि वह अपने ज़ेहनी ख़ोल में जीता है। उसके ज़ेहन के अंदर जो ख़याल आ जाए, उसी को वह असल हक़ीक़त समझ लेता है। वह अपनी नफ़्सियाती पेचीदगी की बिना पर इस क़ाबिल नहीं होता कि उसके ज़ेहन के बाहर जो हक़ीक़तें हैं, उनको जाने और उनकी रोशनी में ज़्यादा दुरुस्त राय क़ायम करे। मनफ़ी सोच दरअसल बंद सोच का दूसरा नाम है।

इसके मुक़ाबले में मुस्बत सोच वह है, जो खुली सोच हो। मुस्बत सोच वाला आदमी तास्सुबात से आज़ाद होकर सोचता है। वह मामलात में बेलाग राय क़ायम करता है। उसकी राय हमेशा इंसाफ़ पर मबनी होती है। वह वही सोचता है, जो हक़ीक़त के ऐतबार से उसे सोचना चाहिए और वही बोलता है, जो अज़-रूए वाक़या उसे बोलना चाहिए। यही वजह है कि मुस्बत सोच वाले आदमी की राहें कभी बंद नहीं होतीं, जबकि मनफ़ी सोच वाले आदमी को हर तरफ़ अपनी राहें बंद दिखाई देती हैं।

मनफ़ी सोच मायूसी की सोच है और मुस्बत सोच उम्मीद की सोच। मनफ़ी सोच रास्ते को बंद हालत में देखती है, जबकि मुस्बत सोच वाले आदमी को हर तरफ़ रास्ते खुले हुए दिखाई देते हैं। मुस्बत सोच बसीरत है और मनफ़ी सोच बे-बसीरती।

नफ़रत का बम

हर आदमी के अंदर एक शैतान छिपा हुआ है। यह शैतान नफ़रत का बम (hate bomb) है। हर आदमी इमकानी तौर पर नफ़रत का बम अपने अंदर लिये हुए है। नफ़रत का यह बम आम हालात में इंसान के अंदर सोया हुआ होता है, लेकिन अगर किसी तरह उसे जगा दिया

जाए, तो अचानक वह बेपनाह होकर भड़क उठता है। वाक़यात बताते हैं कि इस मामले में किसी औरत या मर्द का कोई इस्तिस्ना नहीं।

इस सूरतेहाल का मतलब, दूसरे लफ़्ज़ों में, यह है कि हर इंसान अपने अंदर एक इंतिहाई भड़क उठने (highly inflammable) का माद्दा रखता है। किसी समाज में अगर दस हज़ार आदमी हैं, तो वे गोया कि दस हज़ार चलते-फिरते आतिश-गीर माद्दे का मजमूआ हैं। यह दरअसल ज़ाती मफ़ाद (personal interest) है, जो लोगों के मिज़ाज में तशद्दुद होने के बावजूद मजबूराना तौर पर अम्न-पसंद बनाए रखता है। ऐसी सूरत में क़ियादत (leadership) का काम एक बेहद मुश्किल काम है। जिस लीडर के पास सिर्फ़ शिकायत और एहतिजाज का नारा हो, उसे हरगिज़ मैदान में नहीं आना चाहिए, क्योंकि उसका मनफ़ी नारा लोगों को भड़काएगा और आख़िरकार समाज का वह हाल हो जाएगा, जैसे एक मुक़ाम पर बहुत-से आतिश-गीर माद्दे हों और वे अचानक भड़क उठें।

लीडर पर लाज़िम है कि अगर उसके पास मोहब्बत का नारा है, तब तो वह अपनी तहरीक लेकर समाज में आए और अगर उसके पास सिर्फ़ नफ़रत और शिकायत की बातें हों, तो उसके लिए फ़र्ज़ के दर्जे में ज़रूरी है कि वह इज्तिमाई तहरीक हरगिज़ न शुरू करे। इसके बजाय वह अपने आपको अपने घर के अंदर महसूर कर ले। यही उसके लिए नजात की वाहिद सूरत है।

इज्तिमाई तहरीकें दो क़िस्म की होती हैं— मुस्बत तहरीक और मनफ़ी तहरीक। मुस्बत तहरीक वह है, जो ज़ाती ज़िम्मेदारी (duty) की बुनियाद पर उठाई जाए। ऐसी तहरीक एक सालेह तहरीक है। मनफ़ी तहरीक वह है, जो हुक़ूक़ तलबी और एहतिजाज की बुनियाद पर उठाई जाए। ऐसी तहरीक एक ग़ैर-सालेह तहरीक है। सालेह तहरीक का नतीजा हमेशा अच्छा निकलता है और ग़ैर-सालेह तहरीक हमेशा बुरे अंजाम पर ख़त्म होती है।

रिएक्शन का तरीक़ा

ज़िंदगी के मामले में उसूली बात यह है कि तशद्दुद का तरीक़ा दरअसल रिएक्शन का तरीक़ा है और रिएक्शन का तरीक़ा कभी भी किसी मुस्बत नतीजे तक नहीं पहुँचता। इसका सबब यह है कि हमेशा एक रिएक्शन के बाद दूसरा रिएक्शन पैदा होता है और इस तरीक़ेकार के नतीजे में जो चीज़ वजूद में आती है, वह चेन रिएक्शन (chain reaction) है, न कि रिएक्शन का ख़ात्मा। क़दीम ज़माने में ट्राइबल एज में ऐसा ही होता था। लोग बराबर लड़ते रहते थे। इस्लाम ने यह किया कि यकतरफ़ा तौर पर पुर-अम्न का तरीक़ा इख़्तियार करके चेन रिएक्शन को ख़त्म कर दिया। इसके बाद दुनिया में अमन का दौर आया।

इस सिलसिले में क़ुरआन की एक मुताल्लिक़ आयत यह है—

وَلَا تَسْتَوِي الْحَسَنَةُ وَلَا السَّيِّئَةُ ۚ اِدْفَعْ بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ فَاِذَا الَّذِيْ بَيْنَكَ وَبَيْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِيٌّ حَمِيْمٌ.

“और भलाई और बुराई दोनों बराबर नहीं। तुम जवाब में वह कहो, जो इससे बेहतर हो। फिर तुम देखोगे कि तुममें और जिसमें दुश्मनी थी, वह ऐसा हो गया, जैसे कोई दोस्त क़राबत वाला।” (41:34)

क़ुरआन की इस आयत में जिस तरीक़ेकार का ज़िक्र किया गया है, उसे दोबारा इख़्तियार किया जाए, तो दोबारा वही नतीजा हासिल होगा, जिसका मज़्कूरा आयत में ज़िक्र किया गया है यानी जो बज़ाहिर दुश्मन नज़र आता है, उसका दोस्त बन जाना।

लोग अकसर अपने हरीफ़ की शिकायत करते हैं, लेकिन ग़ौर कीजिए तो यह ज़ुल्म नहीं होता, बल्कि वह चेन रिएक्शन का नतीजा

होता है। आपने अपने हरीफ़ को पत्थर मारा, उसके बाद उसने आपको बम मारा। आपने दोबारा हरीफ़ के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई की, इसके जवाब में उसने भी कोई कार्रवाई की। इस तरह एक चेन रिएक्शन शुरू हो गया, जो कभी ख़त्म नहीं होता।

तशद्दुद का ख़ात्मा जवाबी तशद्दुद से नहीं होता। तशद्दुद के ख़ात्मे की सिर्फ़ एक सूरत है। वह यह है कि आप यकतरफ़ा तौर पर तशद्दुद की कार्यवाही करना छोड़ दें, आप यकतरफ़ा तौर पर ख़ामोश हो जाएँ, आप यकतरफ़ा तौर पुर-अम्न का तरीक़ा इख़्तियार कर लें।

सही तर्ज़-ए-फ़िक्र

सही तर्ज़-ए-फ़िक्र (right thinking) हकीमाना तर्ज़-ए-फ़िक्र की एक आला क़िस्म है। असल यह है कि हम जिस दुनिया में जीते हैं या सुबह-शाम गुज़ारते हैं। इसमें चीज़ें अलग अलग नहीं हैं, बल्कि मख़्लूत (mixed) हालत में हैं। इस बिना पर बज़ाहिर चीज़ों के बारे में सही राय क़ायम करना मुश्किल हो जाता है। चीज़ों के बारे में सही राय उस वक़्त क़ायम होती है, जबकि आप चीज़ों को अलग अलग करके देख सकें। इस तरह सोचे समझे मुताले के बग़ैर आदमी के अंदर सही तर्ज़-ए-फ़िक्र पैदा नहीं हो सकती, वह मबनी बर वाक़या सोच (realistic thinking) का हामिल नहीं बन सकता।

मसलन एक शख़्स अपने बारे में या अपनी कम्युनिटी के बारे में यही कहेगा कि हमारे ऊपर ज़ुल्म हो रहा है। अगर उससे यह कहा जाए कि तुम्हारे बाप-दादा का जो स्टैंडर्ड था, क्या तुम्हारा स्टैंडर्ड इससे कम है। वह जवाब देगा कि नहीं, इससे तो बहुत अच्छा है। मसलन मेरे बाप-दादा साइकिल पर सफ़र करते थे, आज मैं कार में सफ़र करता हूँ। मेरे दादा के ज़माने में बच्चे मामूली मदरसे में पढ़ते थे, आज वे शहर के एक

अच्छे अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ रहे हैं। मेरे दादा कच्चे घर में रहते थे, आज मैं और मेरे बच्चे पक्के घर में रह रहे हैं वग़ैरह। अब अगर आप उससे पूछें कि जब तुम्हारी फ़ैमिली का स्टैंडर्ड पहले के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा बेहतर है, तो ज़ुल्म कहाँ हो रहा है। अब वह हैरान हो जाएगा और कहेगा कि मैंने इस एतिबार से कभी नहीं सोचा।

इससे अंदाज़ा होता है कि असल मसला कहाँ है। असल मसला बहार नहीं है, बल्कि अंदर है। लोगों के अंदर सही तर्ज़-ए-फ़िक्र नहीं है। इसलिए लोग शिकायत में जी रहे हैं, हालाँकि उन्हें शुक्र में जीना चाहिए। सही तर्ज़-ए-फ़िक्र तज्ज़ियाती सोच (analytical thinking) का नाम है। अगर आपके अंदर डिटैच्ड थिंकिंग (detached thinking) हो, अगर आप तज्ज़ियाती अंदाज़ में सोचना जानते हों, तो आप दुरुस्त तर्ज़-ए-फ़िक्र के हामिल बन सकते हैं।

तारीख़ से सबक़

सबक़ का सबसे बड़ा ज़रिया तारीख़ है, मगर तारीख़ से सबक़ लेने के लिए ज़रूरी है कि आदमी मनफ़ी (negative) वाक़यात से मुस्बत (positive) सबक़ लेने का आर्ट जानता हो। तारीख़ मनफ़ी वाक़यात से भरी हुई है। इसलिए तारीख़ के मामले में कभी ऐसा नहीं हो सकता है कि पॉज़िटिव से पॉज़िटिव सबक़ लेने का मौक़ा मिले। तारीख़ में हमेशा यह करना पड़ता है कि मनफ़ी से पॉज़िटिव सबक़ हासिल किया जाए, मगर अकसर लोग ऐसा नहीं कर पाते। इसलिए तारीख़ में ऐसी मिसालें बहुत कम हैं, जबकि किसी ने तारीख़ से कोई बड़ा सबक़ लिया हो।

ताहम तारीख़ में कुछ इस्तिसनाई वाक़यात हैं। मसलन मग़रिब की सलीबी क़ौमों की ज़िंदगी में यह अनोखा वाक़या मिलता है कि उन्होंने 200 साला सलीबी जंगों (crusades) के दौरान ज़िल्लत-आमेज़

शिकस्त (humiliating defeat) का तजुर्बा किया, लेकिन इसके बाद उनके अंदर री-प्लानिंग आई। उन्होंने अपनी कोशिशों का मैदान-ए-जंग के बजाय साइंस के मैदान को बना लिया। फिर दुनिया ने यह हैरत-अंगेज़ वाक़या देखा कि सलीबी जंगों की नाकामी के बाद उन्होंने वेस्टर्न सिविलाइजेशन का मीनार खड़ा कर लिया।

दूसरी मिसाल जर्मनी की है। जर्मनी को दूसरी आलमी जंग में टोटल शिकस्त हुई, यहाँ तक कि उनके मुल्क का तिहाई हिस्सा कटकर अलग हो गया, मगर जर्मनी के लीडरों ने दूसरे आलमी जंग के बाद एक अनोखी प्लानिंग की और दुनिया ने देखा कि जर्मनी अपने खोए हुए मुल्क को दोबारा हासिल कर लिया। जदीद सनअत के मैदान में इतनी ज़्यादा तरक़्क़ी की कि पहले से भी ज़्यादा तरक़्क़ी का दर्जा हासिल कर लिया।

वह तरीक़ा, जिसके ज़रिये उन क़ौमों ने कामयाबी हासिल की। इसे एक लफ़्ज़ में री-प्लानिंग कहा जा सकता है। जब भी आपको आपके पहले मंसूबे में नाकामी हो जाए, तो कभी मायूसी का रास्ता मत इख़्तियार कीजिए, बल्कि एक तिजारती फ़ॉर्मूले के मुताबिक़ ऐसा कीजिए—

"think, think, there must be better way."

यह फ़ॉर्मूला अमलन यही है कि आप अपने मामले की री-प्लानिंग कीजिए।

तजुर्बे से सबक़ सीखिए

तजुर्बा हमेशा सबक़ के लिए होता है, लेकिन बहुत कम लोग हैं, जो अपने तजुर्बे को सबक़ बना सकें। तजुर्बा हर इंसान की ज़िंदगी का एक सबक़-आमोज़ वाक़या होता है। तजुर्बा इंसान के लिए ज़ेहनी इर्तिक़ा (intellectual development) का ज़रिया है, लेकिन आम तौर पर

लोग तजुर्बे से मुस्बत फ़ायदा हासिल नहीं कर पाते। इसलिए कि वे तजुर्बे को शिकायत के ख़ाने में डाल देते हैं।

यह फ़ितरत का क़ानून है कि जब भी किसी के साथ कोई ना-ख़ुशगवार वाक़या पेश आता है, तो वह सिर्फ़ दूसरे की ग़लती की बिना पर नहीं होता। हमेशा ऐसा होता है कि ऐसे किसी वाक़ये में दोनों फ़रीक़ का हिस्सा होता है— किसी का कम किसी का ज़्यादा। आम तौर पर ऐसा होता है कि लोगों के साथ जब कोई ना-ख़ुशगवार वाक़या पेश आता है, तो वे इसे यकतरफ़ा तौर पर देखते हैं। वे अपनी ग़लती को हज़्फ़ करके सारे मामले को दूसरे की ग़लती के ख़ाने में डाल देते हैं। यही तक़रीबन 99 फ़ीसद मिसालों में पेश आता है, मगर इस तरह यकतरफ़ा राय क़ायम करना क़ानून-ए-फ़ितरत के ख़िलाफ़ है। तारीख़ बताती है कि असहाब-ए-रसूल जैसे सारे लोग हों, तब भी ना-ख़ुशगवार वाक़यात में कुछ-न-कुछ अपना हिस्सा शामिल रहता है। इसकी एक मिसाल रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में ग़ज़्वा-ए-उहद का वाक़या है। इस ग़ज़्वा में असहाब-ए-रसूल को इब्तिदाअन कामयाबी हुई, लेकिन बाद में ख़ुद अपनी एक ग़लती से सख़्त नुक़सान उठाना पड़ा। (सूरह आले-इमरान, 3:152-153)

तजुर्बे को सबक़ बनाइए, तजुर्बे को शिकायत न बनाइए। तजुर्बे को सबक़ बनाने का मतलब यह है कि आदमी ने अपनी ज़िंदगी के एक मनफ़ी वाक़ये को मुस्बत वाक़ये में तब्दील कर दिया, आदमी ने अपने नुक़सान को दोबारा अपने लिए फ़ायदा बना लिया। इसके बरअक्स जो लोग तजुर्बे को शिकायत और नफ़रत का ज़रिया बना लें, उन्होंने गोया नुक़सान के बाद मिलने वाले फ़ायदे से भी अपने को महरूम कर लिया। उन्होंने पहले मौक़ा को भी खोया और दूसरे मौक़ा को भी खो दिया।

एक लफ़्ज़ का फ़र्क़

एक साहब, जिनकी तालीम एक मदरसे में हुई है, 12 दिसंबर, 2017 को उनसे मुलाक़ात हुई। उन्होंने कहा कि इससे पहले 2005 में मैं आपसे मिला था। उस वक़्त मैंने कहा था कि मेरे अंदर एहसास-ए-कमतरी (inferiority complex) बहुत ज़्यादा है। इसका कोई हल बताइए। मैंने कहा कि आप सिर्फ़ एक लफ़्ज़ बदल दीजिए। अभी तक आप एहसास-ए-कमतरी का लफ़्ज़ बोलते हैं। आज से आप एहसास-ए-ग़लती का लफ़्ज़ बोलना शुरू कर दीजिए। इंशा-अल्लाह, इसके बाद आपका सारा मामला दुरुस्त हो जाएगा।

आज की मुलाक़ात में उन्होंने बताया कि यह बात आपने एक डायरी में लिखी और वह डायरी मुझे दे दी। उसी वक़्त से मैंने इस नसीहत को पकड़ लिया है। अब मैं यह करता हूँ कि हमेशा अपनी ग़लती को दरयाफ़्त करता हूँ और उसकी इस्लाह की कोशिश करता हूँ। इसका नतीजा यह हुआ कि मेरे सारे मामलात दुरुस्त हो गए। घर के मामलात भी, पड़ोसियों के मामलात भी, मस्जिद और मदरसे के मामलात भी। पहले मैं बराबर टेंशन में रहता था, अब मुझे कोई टेंशन नहीं। किसी से कोई शिकायत नहीं। किसी से कोई झगड़ा नहीं। अब मैं यह करता हूँ कि कोई मसला पेश आता है, तो मैं ख़ुद ही सोचकर उसे दुरुस्त कर लेता हूँ। अब सब लोग मुझसे ख़ुश रहते हैं, जबकि पहले हर शख़्स को मुझसे शिकायत होती थी।

यह करिश्मा सिर्फ़ एक पुर-हिकमत बात का था। वह यह कि इससे पहले वे ग़लत तुलना (wrong comparison) का शिकार थे। अब उन्होंने एहसास-ए-कमतरी के जुमले को बदलकर एहसास-ए-ग़लती बना लिया। पहले वे दूसरों के ख़िलाफ़ सोचा करते थे, अब वे 'अपनी

इस्लाह आप' के अंदाज़ में सोचने लगे। बज़ाहिर यह एक लफ़्ज़ का फ़र्क़ था, लेकिन यह लफ़्ज़ इतना ज़्यादा पुर-हिकमत था कि उसने उनकी पूरी ज़िंदगी को बदल दिया। उन्हें मनफ़ी शख़्सियत से निकालकर मुस्बत शख़्सियत बना दिया।

मुस्बत असर

अरबी ज़बान का मशहूर आलिम अम्र बिन उस्मान सीबावैह (वफ़ात : 180 हिजरी) ईरान में पैदा हुआ और बसरा में परवरिश पाई। उसकी नौजवानी का वाक़या है, जबकि वह हदीस और फ़िक़्ह का तालिब-ए-इल्म था। एक दिन वह मुहद्दिस हम्माद बिन सलमा (वफ़ात : 167) की मजलिस में था। हम्माद ने एक हदीस लिखवाते हुए कहा—

"मेरे साथियों में कोई नहीं है और अगर मैं चाहता तो मैं उनमें से किसी में भी दोष निकाल सकता था, सिर्फ़ 'अबा' दर्दा को छोड़कर।"

ليس مِن أصحابي إلَّا مَن لو شئتُ
لأخذتُ عليه ليس أبا الدرداء.

मगर सीबावैह ने 'अबा' को 'अबू' कहकर पढ़ा—

ليس أبو الدرداء.

इस पर हम्माद ने चिल्लाकर कहा—

"सीबावैह, तुमने ग़लत बोल दिया है; यह (अरबी ग्रामर के लिहाज़ से) एक अपवाद है (इसलिए 'अबू' की जगह 'अबा' होगा, जिसका मतलब है — अबू दर्दा को छोड़कर)।"

सीबावैह को अपनी ग़लती का एहसास हुआ। उसने अपने मन में कहा कि मेरी अरबी ग्रामर कमज़ोर है और मुझे इसमें महारत पैदा करनी चाहिए। अब उसने अरबी ग्रामर सीखना शुरू कर दिया।
(तबकात अल-नहवियीन व अल-लुगवियीन, अबु-बक्र अल-ज़ुबैदी, सफ़्हा 66)

वह बसरा व कूफ़ा के नहवी उलमा ख़लील, यूनुस और ईसा बिन उमर की मजलिसों में जाने लगा। उसने इस फ़न में इतनी मेहनत की कि बिल-आख़िर वह उसका इमाम बन गया। अरबी ग्रामर (नहव और अदब) के अनियमित/ बेक़ायदा मसाइल में उसका कोई सानी न रहा। इसके बाद उसने नहव पर एक ऐसी किताब लिखी, जो अपनी अहमियत और बुलंदी की वजह से 'अल-किताब' के नाम से मशहूर है। इस फ़न के उलमा का कहना है कि फ़न-ए-नहव पर उसके बराबर की कोई किताब आज तक लिखी न जा सकी। जिस शख़्स की नहव कमज़ोर थी, वह तारीख़ का सबसे बड़ा नहवी बन गया।

हर शख़्स की ज़िंदगी में ऐसे वाक़यात आते हैं, जबकि उसे ठेस लगती है। जब उसे दूसरों की तरफ़ से बे-एतराफ़ी की ज़िल्लत उठानी पड़ती है। जब वह महसूस करता है कि वह लोगों के दरमियान बे-जगह हो गया है। ऐसे मौक़े पर प्रतिक्रिया देने की दो सूरतें हैं। एक यह कि आदमी इन तजुर्बात के बाद बेहिम्मती और एहसास-ए-कमतरी में मुब्तला हो जाए। ऐसे आदमी ने गोया अपने आपको मार लिया। दूसरा शख़्स वह है, जिसके लिए ऐसा तजुर्बा एक इंसपिरेशन बन जाए। ऐसे आदमी के लिए उसका तजुर्बा उसकी सलाहियतों को जगाने का बाइस बन जाता है। वह नए सिरे से मेहनत और अमल के रुख़ पर चल पड़ता है, यहाँ तक कि माज़ी का नाकाम इंसान मुस्तक़बिल का कामयाब इंसान बन जाता है। मुस्बत तअस्सुर आदमी को कामयाबी की तरफ़ ले जाता है और मनफ़ी तअस्सुर नाकामी और बरबादी की तरफ़।

अपनी सोच दुरुस्त कीजिए

एक मग़रिबी सफ़र में मेरी मुलाक़ात एक इसाई ख़ातून से हुई। उन्होंने कहा कि मेरा शौहर सख़्त है। मुझे उसके लिए क्या करना चाहिए? मैंने कहा कि यह कोई हक़ीक़ी मसला नहीं। यह सिर्फ़ सोच का मसला है। आप अपनी सोच दुरुस्त कर लीजिए और फिर यह मसला अपने आप ख़त्म हो जाएगा। आप यह न सोचिए कि आपका शौहर सख़्त है। 'सख़्त' एक मनफ़ी लफ़्ज़ है। मनफ़ी अल्फ़ाज़ में आप किसी बात को सोचें, तो उसके बारे में संतुलित अंदाज़ में सोचना मुमकिन नहीं होता। इसके बजाय आपको इस बारे में मुस्बत अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करना चाहिए, ताकि आप जो कुछ सोचें, वह मुस्बत ज़ेहन के तहत सोचें, न कि मनफ़ी ज़ेहन के तहत।

मैंने कहा कि आप यह कहिए कि आपके शौहर के अंदर अज़्म (determination) का माद्दा है। वे किसी चीज़ के बारे में सोचते हैं, तो अटल अंदाज़ में सोचते हैं। यह एक मर्दाना सिफ़त है और वह बिला शुबहा एक अच्छी सिफ़त है। अगर यह सिफ़त न हो, तो आदमी हिम्मत के साथ ज़िंदगी के चैलेंज का सामना नहीं कर सकता और जो आदमी चैलेंज का सामना न कर सके, वह कभी ज़िंदगी में कामयाब भी नहीं हो सकता।

मज़्कूरा ख़ातून कई ज़बान जानती थीं और वे प्रोफ़ेशन के एतिबार से तर्जुमान (interpreter) थीं। मैंने कहा कि आपका प्रोफ़ेशन चैलेंजिंग प्रोफ़ेशन नहीं है। इस प्रोफ़ेशन में नरम होना एक अच्छी बात है। आपका नरमी का मिज़ाज आपके प्रोफ़ेशन के ऐन मुताबिक़ है, मगर आपके शौहर एक मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर हैं। इस काम में उन्हें हर वक़्त चैलेंज का सामना रहता है। ख़ुदा ने आपको नरम बनाया, ताकि आप

अपने प्रोफ़ेशन को कामयाबी के साथ कर सकें। इसके बरअक्स ख़ुदा ने आपके शौहर को सख़्ती का मिज़ाज दिया, जो कि उनके प्रोफ़ेशन के एतिबार से ज़रूरी था। आपको चाहिए कि इस तक़सीम पर आप शुक्र करें, न कि शिकायत।

मामलात में मुस्बत रुख़ पर सोचना आदमी को मुस्बत नतीजे तक पहुँचाता है और मनफ़ी रुख़ पर सोचना उसे मनफ़ी नतीजे तक पहुँचाता है। इस उसूल का ताल्लुक़ जिस तरह ज़िंदगी के दूसरे मामलात से है, इसी तरह उसका ताल्लुक़ शादीशुदा ज़िंदगी से भी है। इस उसूल को जानना बिला शुबहा इस दुनिया में कामयाब ज़िंदगी की राज़ है।

एक वाक़या

सितंबर, 1992 में मेरा एक सफ़र लंदन के लिए हुआ। इस सफ़र में लंदन में मेरा क़ियाम प्रोफ़ेसर अनीस क़ारी की रिहायशगाह पर था। यहाँ 26 सितंबर को जनाब जावेद हसन साहब (Tel: 5581523) से मुलाक़ात हुई। उन्होंने बताया कि वे एक यहूदी फ़ार्म में काम करते हैं। वहाँ एक कट्टर क़िस्म का यहूदी था। मैं जब उसके पास से गुज़रता, तो हमेशा उसे गुड मॉर्निंग कहता, मगर वह मुझे जवाब न देता, बल्कि मुँह फेर लेता। आख़िरकार एक रोज़ उसने कह दिया कि तुम क्यों मुझे गुड मार्निंग कहते हो? तुम जानते हो कि मैं तुमसे नफ़रत करता हूँ।

"Why you say good morning to me. You know, I hate you."

इसके जवाब में जावेद साहब ने कहा कि आपका शुक्रिया, मगर मैं तो आपसे नफ़रत नहीं करता।

But I do not hate you

यह जवाब सुनकर यहूदी ताज्जुब में पड़ गया। उसने कहा कि मैं तो समझता था कि सारे मुसलमान यहूदियों से नफ़रत करते हैं और तुम उनसे अलग नहीं हो, क्योंकि मैं एक यहूदी हूँ।

उस दिन की गुफ़्तुगू के बाद वह काफ़ी नरम पड़ गया, यहाँ तक कि चंद दिन के बाद वह नॉर्मल हो गया। उसका हाल यह हो गया कि जावेद साहब को देखता, तो दूर ही से हेलो-हेलो करने लगता। लोगों को ताज्जुब था कि इतना कट्टर यहूदी एक मुसलमान से इतना क़रीब कैसे हो गया। इसका जवाब एक लफ़्ज़ में यह है— "यकतरफ़ा हुस्न-ए-अख़्लाक़ से।"

स्मार्ट स्पीकर

जदीद इनफ़ॉर्मेशन टेक्नोलॉजी ने क़ुरआन के पैग़ाम को आम करने के लिए निहायत वसीअ मैदान खोल दिए हैं। उनमें निहायत अहम और मशहूर टेक्नोलॉजी वह है, जिसे स्मार्ट स्पीकर कहा जाता है।

Smart Speaker, an internet-enabled speaker that is controlled by spoken commands and is capable of streaming audio content, relaying information, and communicating with other devices.

स्मार्ट स्पीकर इंसानी आवाज़ की बुनियाद पर काम अंजाम देने वाला डिवाइस है। इसके ज़रिये आप बोलकर इंटरनेट के मुख़्तलिफ़ काम अंजाम दे सकते हैं, जैसे— किसी सवाल का जवाब मालूम करना, अलार्म और याददहानी का अमल, ऑडियो या वीडियो या किताबें सुनना वग़ैरह। एक सर्वे के मुताबिक़ 2022 में अमरीका भर में 94 मिलियन स्मार्ट स्पीकर इस्तेमाल में हैं। इस वक़्त तीन कंपनियों

के स्मार्ट स्पीकर्स आम हैं— अमेज़ॉन एलेक्सा, एप्पल होम पॉड और गूगल असिस्टेंट।

अब आप अपने स्मार्ट स्पीकर के ज़रिये तर्जुमा-ए-क़ुरआन भी सुन सकते हैं। अल्लाह के फ़ज़्ल-ओ-करम से सी०पी०एस० की टीम ने इस अज़ीम मौक़े को दावत के लिए इस्तेमाल किया है यानी अमेज़ॉन एलेक्सा और गूगल असिस्टेंट के ज़रिये मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब का अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरआन पेश किया है। यह प्रोजेक्ट मुंबई और अमरीका की सी०पी०एस० टीमों की बाहमी कोशिश का नतीजा है। स्मार्ट स्पीकर के इस्तेमाल का तरीक़ा मालूम करने के लिए नीचे मौजूद यूट्यूब 'क्यू आर' कोड को स्कैन करें। इसके इलावा अगर आप अपने गूगल असिस्टेंट को 'विज़्डम ऑफ़ द डे' (wisdom of the day) कहेंगे, तो मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की अंग्रेज़ी किताब 'क़ुरआनिक विज़्डम' के एक मज़मून का ऑडियो स्टार्ट हो जाएगा। अमेज़ॉन एलेक्सा (Amazon Alexa) और गूगल असिस्टेंट पर क़ुरआन का ऑडियो सुनने के लिए नीचे दिए गए लिंक इस्तेमाल करें।

Google Assistant

Amazon India

Amazon Canada

Amazon Australia

Amazon UK

Amazon US

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

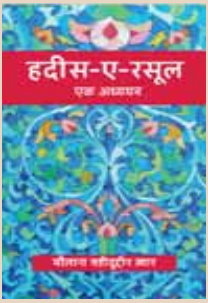

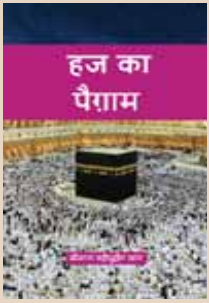

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

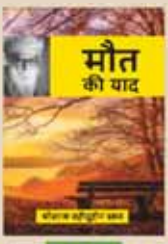

₹40/-

₹20/-

₹40/-

₹30/-

₹45/-

₹20/-

₹40/-